अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष : 44, संयुक्तांक : 10-11, 1-31 जनवरी 2021

वे आत्माजीवी थे

वे आत्माजीवी थे काया से कहीं परे,
वे गोली खाकर और जी उठे, नहीं मरे,
जब से तन चढ़कर, चिता हो गया राख-घूर,
तब से आत्मा
की और महत्ता
जना गए।

उनके जीवन में था ऐसा जादू का रस,
कर लेते थे वे कोटि-कोटि को अपने बस,
उनका प्रभाव हो नहीं सकेगा कभी दूर,
जाते-जाते
बलि-रक्त-सुरा
वे छना गए।

यह झूठ कि माता, तेरा आज सुहाग लुटा,
यह झूठ कि तेरे माथे का सिंदूर छुटा,
अपने माणिक लोहू से तेरी माँग पूर
वे अचल सुहागिन
तुझे अभागिन,
बना गए।

— हरिवंशराय बच्चन

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 44, संयुक्तांक : 10-11, 1-31 जनवरी 2020

अध्यक्ष
चंदन पाल

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **अरविन्द अंजुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अशोक मोती**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. धुंधलाते इतिहास के कुछ अंखुआते पन्ने... 3
3. एक बूढ़ा आदमी और उसका टूटा हुआ... 8
4. हत्यारों की पहचान स्वयं सरदार पटेल... 17
5. गांधीजी जीते जी मरे, इसलिए... 19
6. हिन्दू राष्ट्रवादी गांधी का निर्माण!... 21
7. गांधी-मणि-मुक्ता... 23
8. हमारे पुरखे, जिन पर हमें नाज़ है!... 24
9. ऐसे रसहीन न थे गांधी... 25
10. गांधी की धर्मनिरपेक्षता... 26
11. प्रार्थना, जो प्रार्थना के पूर्व ही स्वीकार... 27
12. गांधीजी के विचार और कार्य : एक... 28
13. चंपारण किसान आंदोलन के लिए... 30
14. महात्मा गांधी को चिट्ठी पहुंचे!... 32
15. गांधी जी का रास्ता परिस्थितियों से... 33
16. हिन्दुस्तान के वास्तविक राजा किसान... 35
17. प्रेरक प्रसंग... 37
18. गांधी जी, आनंद भवन और इलाहाबाद... 38
19. कविता... 40

संपादकीय

किसान आंदोलन लोकवाद बनाम एकाधिकारवाद

किसान आंदोलन का सरकार से टकराव केवल कुछ मुद्दों को लेकर है, यह समझना अर्द्धसत्य होगा। वस्तुतः यह बुनियादी रूप से भिन्न दो विचारधाराओं व सिद्धांतों के टकराव का ऊपरी प्रकटीकरण है। एक विचारधारा कृषि को सामाजिक दायित्व, खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य सम्प्रभुता का आधार बनाये रखना चाहती है। इसके लिए जरूरी है कि ऐसे किसी बीज को न पनपने दिया जाये, जिसके फलीभूत होने से किसान का नियंत्रण खेती की उपज या खेत पर से ही खत्म हो जाये। या जिस नीति से खाद्य सुरक्षा की संभावना खत्म हो जाये। या जिस नीति से पूरा कृषि क्षेत्र वैश्विक पूंजी के नियंत्रण में चला जाये। सरकार की कृषि नीतियां इसी ओर ले जाने वाली है। दूसरी ओर सरकार की नीतियां व विचारधारा है। यह विचारधारा 'मुक्त बाजार' की पक्षधर हैं। अभी तक कृषि को 'मुक्त बाजार' के अधीन लाने की कोशिशें कामयाब नहीं हुई थीं (डब्ल्यूटीओ के बावजूद)। लेकिन कोरोना वैश्विक महामारी का लाभ उठाकर कई नीतियों को लागू किया गया। यह अपेक्षा थी कि कोरोना का भय दिखाकर, आंदोलन पर रोक लगा लेंगे। लेकिन जब चुनावों के दौरान उन्होंने खुद सावधानियों की धज्जियां उड़ा दीं, तो किसान भी अपने आंदोलन के लिए उठ खड़ा हुआ।

यहां हमें यह समझना होगा कि 'मुक्त बाजार' का मतलब क्या है, जिसके प्रति यह सरकार प्रतिबद्ध है। 'मुक्त बाजार' का मतलब है कि बाजार किसी भी राष्ट्रीय आदर्श या सामाजिक लक्ष्य से मुक्त होगा। अतः यदि बाजार द्वारा राष्ट्रीय आदर्श या सामाजिक लक्ष्य का उल्लंघन होगा तो भी सरकार दखल नहीं देगी। इसका मतलब है आर्थिक क्रिया की प्रेरणा सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक आदि मूल्यों व परिवेश से मुक्त होगी और आर्थिक क्रियाओं को इन पैमानों से नापा नहीं जायेगा।

तो आर्थिक क्रिया की प्रेरणा मुक्त बाजार में क्या होगी! 'मुक्त बाजार' के सारे सिद्धांतकार कहते हैं कि आर्थिक क्रिया की प्रेरणा सिर्फ और सिर्फ स्वार्थपरता (सेल्फ इंटरेस्ट) होगी। मनुष्य का लंबा इतिहास रहा है कि उसका व्यवहार सामुदायिक हित या राष्ट्र हित की मर्यादा के अंतर्गत होगा। 'मुक्त बाजार' के सिद्धांत ने पहली बार बताया कि आर्थिक क्रिया की प्रेरणा किसी मर्यादा या आदर्श से जुड़ी नहीं होगी। एक नये तरह के निजी हित की अवधारणा को सम्मानजनक स्थान दिया जाने लगा, जो पहले सभी समुदायों में अनैतिक व त्याज्य समझा जाता था, जो केन्द्रीकृत शोषणकारी अर्थव्यवस्था की देन थीं।

इस सिद्धांत के मूल में पशु प्रवृत्ति को अर्थ क्षेत्र में जायज करार देने की अवधारणा है। वैश्विक विकास क्रम के बारे में एक बात कही गयी—"Struggle for existence and survival of the fittest"। यद्यपि सारे वैज्ञानिक इसे नहीं मानते हैं। इसी का विकृत रूप 'निजी हित' की अवधारणा के रूप में आया। इसकी परिणति यह होगी कि कमजोर या तो लुप्त हो जायेगा या अधीन हो जायेगा तथा ताकतवर का नियंत्रण व वर्चस्व स्थापित होगा। एकाधिकार कायम होगा।

ये लड़ाई लोकवाद एवं एकाधिकारवाद के बीच है। पिछले लगभग 300 वर्षों में औद्योगिक व उसकी सहजीवी आर्थिक इकाइयों में एकाधिकारवाद बनने का मार्ग कभी उपनिवेशवाद तो कभी बाजार के माध्यम से प्रशस्त होता रहा है। किन्तु जहां कहीं छोटे किसानों की संख्या काफी अधिक रही है, वहां कृषि क्षेत्र में यह संभव नहीं हो पाया है। सरकार द्वारा लाये गये ये कृषि कानून, कृषि को मुक्त व्यापार के अंतर्गत लाने तथा एकाधिकार का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा में बड़े कदम हैं। इसके परिणामस्वरूप कमजोर व छोटे किसान खत्म होते जायेंगे तथा कारपोरेट जगत का नियंत्रण व वर्चस्व खेती की जमीन पर बढ़ता जायेगा। इस काम में वित्तीय पूंजी मददगार होगी। हदबंदी के कानून व असामी/रैयत (Tenancy) के कानून में भारी परिवर्तन किये जायेंगे। इन्हें भी राज्य सरकारों के दायरे से निकाल कर, इन पर केन्द्र सरकार द्वारा कानून बनाये जायेंगे।

ये किसान आंदोलन एक बड़ी लड़ाई का हिस्सा है। इसमें छोटे कारोबारियों, श्रमिकों, आदिवासियों, दलितों आदि सभी को जुड़ना होगा। किसानों को भी अपने तात्कालिक व दूरगामी लक्ष्य सुस्पष्ट करने होंगे। जिस सीमा तक ये दलों के दायरे के बाहर तथा अहिंसक होंगे, उस सीमा तक इनकी सफलता सुनिश्चित है। लोकवाद को पुनर्स्थापित करके ही एकाधिकारवादी प्रवृत्ति का विकल्प खड़ा किया जा सकेगा।

–बिमल कुमार

नीड़ का निर्वाण

धुंधलाते इतिहास के कुछ अंखुआते पन्ने

(बापू-कथा)

❑ हरिभाऊ उपाध्याय

पहली पवित्र आहुति

(1922)

'प्रभो, इन्हें माफ करो, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'

—ईसा मसीह

बारडोली के सामूहिक सत्याग्रह को वापस लेने का एक परिणाम यही हो सकता था कि गांधीजी की गिरफ्तारी होती। पासा पड़ चुका था। अब गांधीजी को धर-दबोचने की सरकार की बारी थी। कोई भी सरकार देश में किसी भी नेता पर उस समय तक हमला नहीं करती, जब तक उसकी लोकप्रियता बढ़ी हुई होती है। वह सबके साथ अपना अवसर देखती रहती है और जब सेना पीछे हटने लगती है तो दुश्मन अपने पूरे वेग के साथ टूट पड़ता है।

10 मार्च को गांधीजी गिरफ्तार किये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारी का निश्चय फरवरी के अंतिम सप्ताह में ही कर लिया गया था। गिरफ्तारी के समय गांधीजी का प्रिय भजन 'वैष्णवजन' आश्रमवासियों द्वारा एक स्वर से गाया गया। उनके स्वर में करुणा और निश्चय था। सारे आश्रमवासियों में मानो शान्त बिजली फैल गयी थी। सबके चेहरे प्रफुल्लित थे। उन्हें साबरमती-जेल, जो आश्रम के निकट ही थी, ले जाया गया, जहाँ पहले लोकमान्य तिलक भी 1909 में रखे गये थे। चलते समय गांधीजी ने आश्रमवासियों को सन्देश में कहा कि ''खूब काम करो–आलस्य को पास तक न फटकने दो।'' उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया था। इसे ऐतिहासिक मुकदमा कहा गया है। उस समय का एक चित्र सरोजिनी देवी ने इस प्रकार खींचा है–''जब गांधीजी ने अपनी शान्त, अजेय और कृश काया को लेकर अपने भक्त, शिष्य और सहमना शंकरलाल बैंकर के साथ अदालत में प्रवेश किया, तो कनून की निगाह में इस कैदी और अपराधी के सम्मान के लिए सब सहसा एक साथ खड़े हो गये।''

हरिभाऊ उपाध्याय

गांधीजी पर तीन लेखों के लिए मुकदमा चलाया गया था—(1) राजभक्ति में दखल। (2) समस्या और उसका हल। (3) गर्जन-तर्जन। जब गांधीजी से अदालत ने उनके नामधाम के बाद पेशा पूछा तो उन्होंने अपने को 'किसान और जुलाहा' बताया। इस पर जज साहब जरा चौंके। ज्यों ही अभियोग पढ़कर सुनाये गये, गांधीजी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

18 मार्च को ब्रिटिश शासन की लौकिक जेल में, भारत के एक अलौकिक नेता का मुकदमा चला। अपने लिखित बयान के पहले गांधीजी ने जबानी कहा—

''मैं अदालत से कोई बात जरा भी छिपाना नहीं चाहता। प्रचलित शासन पद्धति के प्रति अप्रीति उत्पन्न करने की मुझे धुन ही लग गयी है। मेरे लिए यह बड़ा दुःखदायी कर्त्तव्य है, लेकिन मेरे सिर पर जो जवाबदेहियाँ थीं, उन्हें देखते हुए उस कर्त्तव्य का पालन करना आवश्यक था। मैं जानता था कि मैं संकट को निमंत्रण दे रहा हूँ, आग के साथ खेल रहा हूँ। परन्तु फिर भी कहूँगा कि यदि मैं आजाद कर दिया जाऊँ तो भी मैं फिर-फिर यही काम करूँगा। अहिंसा मेरे धर्म का पहला और अन्तिम मंत्र है। परन्तु मुझे तो दो बुराइयों में से एक को पसन्द करना था। या तो मैं इस शासन पद्धति के अधीन हो सकता था, जिससे मेरे देश को अगणित हानि पहुँच रही है, अथवा अपने देश की वास्तविक स्थिति को जानने के बाद ऐसा जोखिम उठा सकता था, जिससे मेरे देशभाइयों का खून उबल उठता है।''

इसके बाद गांधीजी ने अपना लम्बा लिखित बयान पढ़ा, जिसमें उन्होंने कहा—

''वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इंग्लैण्ड और भारत जिस अप्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, उससे असहयोग के द्वारा उद्धार पाने का मार्ग बताकर मैंने दोनों की सेवा ही की है। मेरी नाकिस राय में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्त्तव्य है, उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्त्तव्य है। इससे पहले बुराई करने वाले को क्षति पहुँचाने के लिए असहयोग का हिंसात्मक अवलंबन किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियों को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराई को कायम रखती है। अतः बुराई की जड़ काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से बिलकुल अलग रहें।

''अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो भी सजा मिले, उसे स्वीकार कर लें। इसलिए मैं यहाँ उस कार्य के लिए, जो कानून की निगाहों में जानबूझकर किया गया अपराध है और मेरी निगाह में किसी नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, सबसे बड़ा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करने को तैयार हूँ।

''आपके अफसरों और जज के सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। यदि आप लोग हृदय से समझते हैं कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है, वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदों से इस्तीफा दे दें और बुराई से अपना सम्बन्ध तोड़ लें, लेकिन यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानून का प्रयोग करने में आप सहायता दे रहे

हैं, वह वास्तव में इस देश की जनता के मंगल के लिए है और मेरा आचरण लोगों के अहित के लिए है, तो मुझे बड़े-से-बड़ा दण्ड दें।''

इसके अनन्तर फैसला सुनाया गया। जज साहब ने कहा—''गांधीजी, आपने अपराध स्वीकार करके एक तरह से मेरा काम बहुत आसान कर दिया है। परन्तु यह निर्णय करना सहज नहीं है कि आपको कितनी सजा दी जाय। मैं नहीं समझता कि इस देश में किसी भी जज के सामने इतना कठिन काम कभी उपस्थित हुआ हो। कानून की नजर में न तो कोई छोटा है, न बड़ा। अब तक मुझे जिन-जिन लोगों का फैसला करना पड़ा है, अथवा भविष्य में भी करना पड़ेगा, उन सबकी अपेक्षा आप भिन्न ही कोटि के पुरुष हैं। इस बात को मैं अपने ध्यान से नहीं हटा सकता। आप अपने करोड़ों देशभाइयों की दृष्टि में महान् देशभक्त हैं, महान् नेता हैं, इस बात को भी मैं अपने खयाल से अलग नहीं कर सकता। जो लोग राजनीतिक मामलों में आपसे अलग रहते हैं, वे भी आपको आदर्श मानते हैं। वे केवल आपको अलौकिक ही नहीं, वरन् साधु कोटि का पुरुष मानते हैं।

''परन्तु मुझे तो आपका विचार एक ही दृष्टि से करना है। एक कानून के अधीन मनुष्य की तरह ही आपका इन्साफ करना है। ऐसे अपराध के लिए जो कानून की दृष्टि से गंभीर है और जिसे अपराधी खुद कबूल करता है। बालगंगाधर तिलक को इसी दफा (राजद्रोह) की सजा दी गयी थी। उन्हें अन्त को छह साल की सादी कैद की सजा भोगनी पड़ी थी। मुझे विश्वास है कि मैं यदि आपको भी तिलक के जोड़ में बिठाऊँ तो यह आपको अनुचित न दिखाई देगा।''

इस प्रकार जज ने फैसले में लोकमान्य तिलक का दृष्टान्त देते हुए गांधीजी को छह वर्ष कैद की सजा दी और शंकरलाल बैंकर को एक वर्ष की कैद और 1000 रु0 जुर्माने का दण्ड मिला। जुर्माना न देने पर छह मास की और कैद। गांधीजी ने गिने-चुने शब्दों में उत्तर दिया कि ''यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलक के नाम के साथ जोड़ा गया।'' उन्होंने जज को सजा देने के मामले में विचारशीलता से काम लेने और उसकी शिष्टता के लिए धन्यवाद दिया और अदालत में उपस्थित लोगों से विदा ली। उस समय बहुत से दर्शकों की आँखों में आँसू भरे हुए थे। इस प्रकार धर्म मानो अधर्म का कैदी हो गया।

सजा सुनाते हुए जज ने यह भी कहा कि ''यदि किसी परिस्थितिवश सरकार ने इससे पहले ही आपको मुक्त करना सम्भव किया तो मुझसे अधिक और कोई प्रसन्न न होगा।'' इस सारे प्रकरण में न्यायमूर्ति (ब्रूमफील्ड) और महात्मा में उच्च भावनाओं की मानो प्रतियोगिता ही हुई। उत्तर में गांधीजी ने सहर्ष कहा कि ''यह मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है कि सरकार मुझे ऐसा दण्ड देकर तिलक महाराज का स्थान दे रही है। पर मुझे यह भी दण्ड बहुत हल्का मालूम हो रहा है। मैं तो इससे भी बड़े दण्ड की अपेक्षा करता था।'' इस प्रकार अभियोग समाप्त हुआ। गाांधीजी के मित्र सिसकते हुए उनके पैरों से लिपट गये। महात्मा ने मुस्कराते हुए उनसे विदा माँगी।

गांधीजी को पहले ही अनुमान हो गया था कि सरकार मुझ पर हाथ डाल सकती है, इसलिए उन्होंने 6 मार्च की 'यंग इंडिया' में 'यदि मैं गिरफ्तार होऊँ?' शीर्षक से सत्याग्रह बन्द करने का आदेश दिया था। उन्होंने लिखा था कि ''ऐसी हालत में सत्याग्रह जारी रखना दुराग्रह होगा।'' इसलिए अदालत से विदा होते समय महात्माजी ने केवल इतना कहा—

''मुझे अब संदेश देने की आवश्यकता नहीं। मेरा संदेश तो लोग जानते ही हैं। लोगों से कहिये कि हर हिन्दुस्तानी शांति रखे। हर आदमी हर प्रयत्न से शांति की रक्षा करे। केवल खादी पहने और चरखा काते। लोग यदि मुझे छुड़ाना चाहते हों, तो शांति के ही द्वारा छुड़ायें। यदि लोग शांति छोड़ देंगे, तो याद रखिये, मैं जेल में ही रहना पसंद करूँगा।''

साबरमती जेल की दीवारों ने गांधीजी को पाकर धन्यता महसूस की। उस समय गांधीजी ने उपस्थित साथियों से कहा—''मेरे इस हाथ में खादी रखो और उस हाथ से स्वराज्य लो।''

ब्रिटेन ने भारत का अब तक जो शोषण किया था, उसका प्रायश्चित करने के बदले उसके शासन ने अपने एक परम मित्र को कानून की दुहाई देकर भारतीय स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर यह पहली पवित्र आहुति देना ठीक समझा!

× × ×

विष का प्याला

(1949)

'राणा भेजा जहर-पियाला'

—मीरा

इस बीच मार्च 1947 में लार्ड माउण्टबेटन, लार्ड वेवल के स्थान पर भारत के वाइसराय बनकर दिल्ली आ गये थे। वाइसराय ने तार देकर गांधीजी को मिलने बुलाया था। गांधीजी बिहार-यात्रा का कार्यक्रम छोड़कर उनसे दिल्ली जाकर मिल आये थे, माउण्टबेटन ने जिन्ना से भी बात की। उन्होंने बँटवारे की अपनी उसी पुरानी रट को दुहराया।

साम्प्रदायिकता की भीषण और रोमांचकारी आग को रोकने के लिए गांधीजी ने इन्हीं दिनों दो बार—कलकत्ता में और फिर दिल्ली के बिड़ला हाउस में—अनशन प्रारम्भ किया था।

जब गांधीजी वाइसराय से मिलने बिहार से दिल्ली गये, तो बिहार लौटने से पूर्व गांधीजी और जिन्ना का एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें भारतीय जनता से अपील की गयी थी कि वह सांप्रदायिक दंगों और तोड़-फोड़ के कामों में भाग नहीं ले और हिन्दू-मुसलमान सब प्रेमपूर्वक रहें। उन्होंने इस वक्तव्य में दंगों, तोड़-फोड़ और लूटपाट की निन्दा की और बताया कि राजनीतिक उद्देश्यों के लिए हिंसा का आश्रय लेना अनुचित है। परन्तु पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रदेश तथा सिन्ध के लीगी कार्यकर्त्ता इसके विपरीत आचरण करते रहे।

नये वाइसराय ने अपनी चतुराई से भारत की राजनीतिक स्थिति को भली प्रकार समझ लिया था। वे भारत के प्रायः सभी प्रमुख दलों के प्रतिनिधियों और नेताओं से मिल चुके थे। मुख्यतः गांधीजी, जिन्ना साहब तथा कांग्रेस के अधिकृत नेताओं के रुख से वे भलीभाँति अवगत हो चुके थे।

उनके ध्यान में यह बात भी आ गयी थी कि गांधीजी देश के विभाजन के लिए कत्तई तैयार नहीं हैं, चाहे सरकार गठन करने का काम जिन्ना साहब को ही सौंप दिया जाय।

परन्तु जिन्ना साहब विभाजन के सिवा किसी बात के लिए तैयार ही नहीं थे। उधर कांग्रेस के नेताओं और कांग्रेस-कार्यसमिति ने राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले दंगों, लूटपाट और रोमांचकारी घटनाओं को देखते हुए विवश होकर विभाजन की माँग को मंजूर कर लिया था।

कांग्रेस महासमिति ने जब भारत-विभाजन की इस योजना पर विचार किया तब गांधीजी ने विभाजन से होने वाले परिणामों और बुराइयों को समझाते हुए अपनी सम्मति स्पष्ट बतायी। फिर भी कांग्रेस कार्य-समिति के पक्ष में निर्णय करने के लिए जोर लगाया। संभवतः अपनी भावनाओं और विचारों की कुर्बानी के मूल्य पर भी वे कांग्रेस संगठन में फूट नहीं पड़ने देना चाहते थे।

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया। लाहौर में ली गयी स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा पूरी हुई। परन्तु लाहौर ही भारत में नहीं रहा। भारत स्वतंत्र तो हो गया, परन्तु गांधीजी को खण्डित भारत का विष का प्याला पीना पड़ा और सरहदी गांधी को सदा के लिए भारत से बहिष्कृत होना पड़ा। देश के विभाजन में कितना बड़ा नरमेघ हुआ, कितने निर्दोषों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा, क्या-क्या पाशविकताएँ हुईं, इसकी कल्पना दिल को दहला देती है। विभाजन से लाखों को अपना घर-बार, खेती, जायदाद छोड़कर राह का भिखारी बनकर बाहर निकलना पड़ा। संसार में आज तक इतनी बड़ी आबादी को इधर से उधर और उधर से इधर नहीं जाना पड़ा था।

गांधीजी ने कहा था, ''मैं 15 अगस्त के समारोह में भाग नहीं ले सकता।'' उनका कहना था कि ''32 वर्ष के काम का शर्मनाक अंत हो रहा है।'' उन्होंने देश में होने वाले उपद्रवों के बारे में कहा कि ''मैंने इस विश्वास में अपने को धोखा दिया कि जनता अहिंसा के साथ बँधी हुई है।''

कलकत्ता की हालत पुनः बिगड़ गयी थी। साम्प्रदायिक उपद्रव चरम सीमा पर पहुँच गये थे। अधिकांश मुस्लिम अफसरों एवं पुलिस-अधिकारियों के पाकिस्तान चले जाने के कारण हिन्दू उपद्रवकारियों की बन आयी थी।

13 अगस्त को गांधीजी ने बंगाल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुहरावर्दी को साथ लेकर, बेलेघाटा में एक मुसलमान मजदूर के मकान में रहकर कार्य शुरू किया। यह मुहल्ला उन दिनों असुरक्षित और खतरे से भरा बताया जाता था। गांधीजी के पहुँचने के बाद ही कुछ हिन्दू युवक उनके शान्ति-प्रयत्नों के खिलाफ प्रदर्शन करने को आ धमके। गांधीजी ने उन्हें

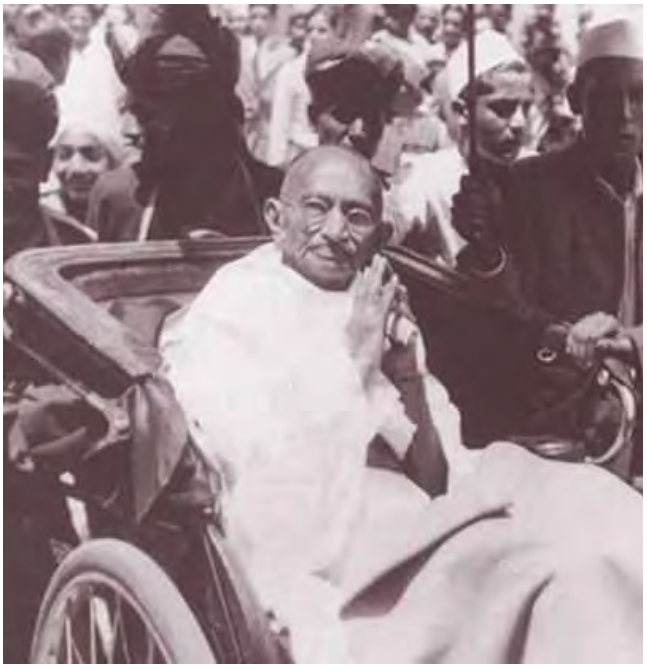

शान्ति-प्रयत्नों का अभिप्राय समझाया और बताया कि भाई-भाई की लड़ाई को रोकना किसलिए आवश्यक है और यह भी बताया कि हिंसा और तोड़-फोड़ से तो किसी का लाभ न होगा, उल्टे हिन्दुओं का ही नुकसान होगा। उनकी मधुर, प्रेम भरी वाणी से युवकों का रोष ठंडा हो गया। गांधीजी के शान्ति-प्रयासों से कलकत्ते की हालत में रातों-रात परिवर्तन हो गया। दंगे रुक गये, आजादी की अगवानी का दिन 14 अगस्त दोनों कौमों ने संयुक्त रूप से साथ मिलकर मनाया। हिन्दू और मुसलमान निर्भय होकर सड़कों पर निकल आये। परस्पर गले मिले और आजादी का उत्सव मनाने लगे।

इन्हीं दिनों पंजाब के भीषण साम्प्रदायिक दंगों की खबरों से सारे देश में आतंक फैल गया। इन खबरों से गांधीजी को पुनः धक्का पहुँचा। वे बड़े चिन्तित और व्यथित हो गये। वे पंजाब जाने की तैयारी करने लगे और जवाहरलालजी की सूचना की प्रतीक्षा करने लगे। कलकत्ता में गांधीजी के शान्ति-प्रयत्नों से शान्ति का वातावरण बन गया था। उनकी 18 अगस्त की एक आम सभा में 5 लाख व्यक्तियों की उपस्थिति और शान्तिपूर्वक सभा का हो जाना शान्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण था। परन्तु पंजाब से आने वाले समाचारों और वहाँ की लोमहर्षक घटनाओं ने यहाँ भी वातावरण में गर्मी पैदा कर दी। एकाएक 31 अगस्त की रात को बेलेघाटा में गांधीजी के निवास-स्थान पर आकर कुछ लोगों ने उन्हें घेर लिया और खिड़कियों के काँच फोड़ डाले, लाठी और ईंटों का प्रहार किया। संयोग से गांधीजी को कोई चोट नहीं आयी। उपद्रव शुरू होते ही कलकत्ते की भीतरी बस्तियों और गलियों में घूमकर गांधीजी ने शान्ति-सैनिकों का संगठन कर लोगों को शान्ति के लिए काम करने का अनुरोध किया।

इन शान्ति-प्रयत्नों के साथ ही गांधीजी ने पहली सितम्बर से कलकत्ता में अनशन शुरू कर दिया। 'जब तक कलकत्ता में शान्ति स्थापित नहीं होगी, तब तक गांधीजी अपना उपवास नहीं तोड़ेंगे'– इस घोषणा ने सारे कलकत्ते को हिला दिया। मुसलमानों और हिन्दुओं का जोश ठंडा हो गया। वे लज्जा के मारे झुक गये। उपद्रवकारियों ने आगे होकर गैर-कानूनी हथियारों के कई ट्रक अधिकारियों के पास जाकर जमा करा दिये। वे गांधीजी की मौत का कलंक अपने पर लेने की हिम्मत नहीं कर सके थे। दोनों कौमों के नेताओं ने आपस में शान्ति बनाये रखने की प्रतिज्ञा की और गांधीजी से प्रार्थना की कि वे अनशन समाप्त कर दें। गांधीजी ने इस शर्त पर अपना अनशन तोड़ा कि फिर शान्ति भंग हुई तो वे आमरण अनशन कर देंगे। कलकत्ता के इस उपवास ने जादू का काम किया। 'लंदन टाइम्स' के संवाददाता ने उस समय कहा था कि 'जो काम सेना के कई डिवीजनों से नहीं हो पाता,

उसे एक उपवास ने कर दिखाया।' उसके बाद कलकत्ता और बंगाल में कोई गड़बड़ी नहीं हुई।

सचमुच यह कितनी आश्चर्यजनक बात थी कि पंजाब में, जहाँ एक लाख सैनिकों की फौज दंगों को दबाने और शान्ति कायम करने के प्रयत्नों में व्यस्त थी, वहाँ कुछ भी कामयाबी नहीं मिल रही थी और गांधीजी ने अपने शान्ति-प्रयास से लाखों लोगों का दिल बदल दिया था। स्वयं माउण्टबेटन ने कहा था कि जो चीज गांधीजी ने केवल आत्मिक बल से प्राप्त कर ली है, उसे चार फौजी डिवीजन भी बल-प्रयोग से हासिल नहीं कर सकते थे।

कलकत्ता और बंगाल में वातावरण अब शान्त था। गांधीजी इन दिनों अत्यधिक दुर्बल और कमजोर हो चुके थे। उन्हें अपने शान्ति-मिशन का काम चालू रखना था। इसी हालत में वे अपनी पंजाब-यात्रा के लिए चल पड़े।

इस तरह कहना होगा कि कायदे-आजम जिन्ना ने धमकियों और उपद्रवों के बल पर पाकिस्तान ले लिया और गांधीजी का अखण्ड स्वप्न खण्ड-खण्ड हो गया। वे हलाहल पीकर रह गये।

× × ×

हे राम!

(1948)

'अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् ।'
(मरना हो तो अनायास, जीना हो तो बिना दीनता के।)

28 जनवरी

राजकुमारी : आज की प्रार्थना-सभा में कोई शोर-गुल तो नहीं हुआ था?

गांधीजी : नहीं, परन्तु इस सवाल का मतलब यह तो नहीं कि तुम मेरे लिए चिन्ता कर रही हो? अगर मुझे किसी पागल आदमी की गोली से ही मरना है तो मेरे दिल में भगवान् हों और मुँह पर मुस्कराहट। और तुम मुझे वचन दो कि अगर कहीं ऐसा हुआ तो तुम्हारी आँखों से एक भी आँसू नहीं टपकेगा।

29 जनवरी

पूरे दिनभर वे इतना काम करते रहे कि शाम को बहुत थक गये थे। उनका सिर घूम रहा था। फिर भी 'लोक सेवक संघ' के रूप में कांग्रेस का नया विधान (अपनी वसीयत) की ओर इशारा करते हुए बोले 'मुझे इसे तो आज पूरा कर ही लेना चाहिए।'

सोने के लिए वे सवा नौ बजे उठे। बहुत चिंतित थे। उठे और मनु से बोले—

'है बहारे बाग दुनिया चंद रोज
देख लो इसका तमाशा चन्द रोज!'

उसके बाद वे बिस्तर पर लेट गये।

30 जनवरी—शुक्रवार

नित्य के समान सुबह की प्रार्थना के लिए साढ़े तीन बजे उठे। उसके बाद काम में लग गये। फिर थोड़ा सो गये। आठ बजे नित्य की मालिश के लिए तैयार हो गये। प्यारेलाल के कमरे से गुजरते हुए कांग्रेस के लिए बनाया नया विधान उन्हें देते हुए कहा, 'इसे देख जाओ। मैंने यह लिखा तब दिमाग पर बहुत तनाव था। इसमें कहीं कोई बात छूट गयी हो तो इसे ठीक कर लेना।' मालिश से लौटे तो प्यारेलाल से पूछा कि 'उसे देख लिया?' फिर मद्रास की अन्न समस्या पर एक नोट तैयार करने के लिए कहते हुए बोले—'अन्न मंत्रालय बड़ा चिंतित है। परन्तु मैं कहता हूँ कि मद्रास जैसे प्रान्त को ऐसी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। प्रकृति की कृपा से वहाँ नारियल और ताड़ के पेड़ हैं, मूँगफली और केले भी खूब होते हैं, और भी कितनी ही चीजें पैदा हो सकती हैं। लोगों को सिर्फ अपने साधनों का उपयोग करने की कला सीख लेनी है।'

इसके बाद गांधीजी स्नान-घर में चले गये और वहाँ से तरोताजा होकर निकले। भोजन किया, बंगला-भाषा का पाठ याद किया। तब तक प्यारेलाल वह विधान ठीक करके ले आये। उसको ध्यान से देखा। इस प्रकार अपने सारे नित्य के काम उन्होंने यथावत् किये।

दोपहर की निद्रा के बाद कुछ मुलाकाती आये। इनमें दिल्ली के कुछ मौलाना थे। उन्होंने बापू से कहा—'आप वर्धा जा सकते हैं।' बापू ने कहा कि ''मैं केवल कुछ समय के लिए ही जा रहा हूँ। हाँ, ईश्वर की मर्जी कुछ और हुई और कोई अकल्पित बात हो गयी, तो नहीं कह सकता।''

इसके बाद उन्होंने बिशन से कहा—''बिशन, मेरी महत्वपूर्ण चिट्ठियाँ ले आ। मुझे उनके जवाब आज ही दे देने चाहिए। शायद कल मैं रहूँ ही नहीं।''

इसके बाद कुछ सिंधी शरणार्थी आये। उनकी कहानी सुनकर बापू दुःखी हुए।

चार बजे शाम को सरदार आये। उनसे पूरे एक घण्टा बातचीत होती रही। सरदार और जवाहरलाल के बीच कुछ मतभेद थे। गांधीजी को इसकी बड़ी चिन्ता थी। वे चाहते थे कि दोनों मिलकर काम करें। प्रार्थना के बाद जवाहरलाल और मौलाना अबुल कलाम आजाद इसी संबंध में बातचीत करने के लिए आने वाले थे। सरदार से बात करने में देर हो गयी। बापू प्रार्थना के लिए उठे और प्रार्थना के स्थान तक पहुँच भी नहीं पाये थे कि बीच में ही श्रोताओं की भीड़ में से एक युवक आसपास के लोगों को कुहनी से अलग करता हुआ बापू के सामने आया, झुका, और प्रणाम की मुद्रा में जुड़े उसके हाथों में छिपी पिस्तौल से ताड़-ताड़ की तीन आवाजें आयीं और बापू 'हे राम' कहते हुए लड़खड़ाकर लुढ़क गये।

युवक वहीं पकड़ लिया गया। वह हिन्दू ही था और ऐसे विचार को मानने वाला था, जो समझता था कि गांधीजी हिन्दू-समाज को बहुत हानि पहुँचा रहे हैं।

रेडियो का चालू कार्यक्रम एकाएक बन्द हो गया और क्षणभर में बापू के खून का समाचार दसों दिशाओं में फैल गया! संसार सन्न रह गया। समाचार सुनने वालों को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि वे क्या सुन रहे हैं। देश शोक में डूब गया। राष्ट्र ने अपने झण्डे झुका दिये। परन्तु कहीं-कहीं मिठाइयाँ भी बाँटी गयीं।

कुछ एक क्षणों के बाद रेडियो पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल की शोक से परिपूर्ण और काँपती हुई आवाज सुनाई दीः

''हमारे जीवन को प्रकाशित करने वाला प्रकाश-पुंज बुझ गया। नहीं, मैं भूल रहा हूँ, क्योंकि इस देश को अब तक जो इतना प्रकाश दे रहा था, वह तेज साधारण नहीं था। वह तो हजार साल के बाद तक भी इस देश को उसी प्रकार प्रकाशित करता रहेगा और संसार इसे देखेगा, क्योंकि वह जीते-जागते सत्य की ज्योति थी।''

संसार के कोने-कोने से शोक-संदेश हजारों की संख्या में दिल्ली पहुँचने लगे।

अहिंसा के उस अवतार का शव सजाकर तोपगाड़ी पर रखा गया। एक विशाल यात्रा निकली, जैसी दिल्ली ने कभी देखी नहीं थी। श्मशान भूमि शोकाकुलों से भर गयी और सम्पूर्ण सैनिक सम्मान के साथ अहिंसा की वह मूर्ति अग्नि-ज्वाला को समर्पित हो गयी।

गगनगिरा गूँजने लगी—

''अगली पुश्तों को विश्वास भी नहीं होगा कि ऐसा भी कोई पुरुष हाड़-मांस के रूप में इस पृथ्वी पर रहा होगा।''—आइंस्टीन

''यह तो दूसरा ईसा क्रूस पर चढ़ा दिया गया।'' —पर्लबक

''मेरे गुरुदेव, मेरे नेता, मेरे पिता की आत्मा शांति से नहीं बैठे। पिताजी, आप शांति से न बैठें। हमें अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रखिये। हम आपके उत्तराधिकारी कहलाते हैं, आपके बेटे-बेटियाँ हैं, आपके सपनों के संरक्षक हैं, हम भारत के भाग्यविधाता हैं। हमें अपने वचन पूरे करने को कह दें। नहीं, आप शान्ति से न बैठें!'' हमारी अधीर विकल वेदना और क्या पुकारेगी?

बस, अब यहाँ हमारी लेखनी रुक जाती है। हमारी आँखों में गोलियों के तीन घाव, उनसे बिखरे लाल-लाल रक्तकण छा रहे हैं और हमारे कानों में है 'हे राम' की गूँज!!

× × ×

मांगल्य का पुनर्जन्म

दक्षिण अफ्रीका से लेकर नोआखाली के अन्त तक गांधीजी का जीवन सत्य की खोज, सत्याग्रह और सत्य के साक्षात्कार की साधनाओं से ओतप्रोत रहा। 1915 में वे भारत लौटे, तब तक का दक्षिण अफ्रीका का उनका जीवन मानो सत्याग्रह की प्रसव-पीड़ा (तप, कष्टमय जीवन) का, कष्ट-सहन सत्याग्रह के प्रशिक्षण का रहा। इसे हम सत्याग्रह की प्रसव-पीड़ा तथा शैशव-काल कह सकते हैं।

1915 से 1930 तक के 15 वर्षों का काल सत्याग्रह की किशोरावस्था और यौवन-काल कहा जा सकता है, जिसमें गांधीजी और सत्याग्रह की बहार अपने पूरे जोर में नजर आती है। उद्दाम उत्साह, अदम्य उमंग, अविश्रान्त श्रम, तेजस्वी पराक्रम, स्वतन्त्रता के लिए बलिवेदी पर चढ़ने की परस्पर प्रतिस्पर्द्धा, प्रत्येक की पहला नंबर लाने की उत्सुकता, अपूर्व निर्भयता आदि के अद्भुत दर्शन— **''नहिं रखनी, सरकार जालिम नहिं रखनी।'' ''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है!'' ''हो जहाँ बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो।'' ''मुझे तोड़ कर हे वनमाली उस पथ पर तू देना फेंक, मातृभूमि-हित शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक!''** इन गीतों में होते हैं। उन दिनों के जेल के सीखचों, बेड़ियों, काल-कोठरियों, बेतों-कोड़ों की याद आती है, तो आज भी हठात् मुँह से मित्रों के सामने निकल पड़ता है कि उन दिनों की मस्ती के मुकाबले आज का स्वतंत्र जीवन भी फीका मालूम पड़ने लगता है। वह काल सत्याग्रह के पूर्ण यौवन के निखार का काल था।

उसके बाद आता है, 1942 तक स्वराज्य-संग्राम-काल! इसमें सत्याग्रह और गांधीजी के युद्ध-संचालन-कौशल, संधि-वार्ताओं में राजनीतिक सूझ-बूझ, दक्षता आदि की प्रौढ़ावस्था के दर्शन होते हैं। इसमें प्रसंग-प्रसंग पर उनकी हार्दिक भावना, वेदना और मर्मान्तक पीड़ा की झलक भी दिखाई देती है।

अन्त में फिर महान् वेदना-काल आता है, जो अन्त के 'हे राम' तक चलता है और एक हिन्दू उन्हें उस वेदना से छुटकारा दिला देता है!

देश आजाद तो हुआ, पर खण्ड-खण्ड होकर!! गांधी का स्वप्न ''अखण्ड-भारत'' टूट गया! हिन्दू-मुस्लिम दंगों ने उसकी सहृदय, समभावी, निश्छल, सर्वोदयी भारत की आकांक्षा से परिपूरित आत्मा के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। कायदे-आजम जिन्ना धमकी-धमकी में ही पाकिस्तान बना गये। गांधी ने सारे जीवन की एकमात्र भौतिक आकांक्षा ''अखण्ड भारत'' अधूरी छोड़कर, अपनी आँखों के सामने उसे चूर-चूर होते देखकर, आँखें मूँद लीं। इस वेदना की कोई सीमा नहीं, उसे जानने, कहने और सुनने की किसी के पास शक्ति नहीं। ''जिसने हमको इन्सान बनाया, हमने उसे हैवान होकर मिटाया!'' नोआखाली की उनकी पदयात्रा, साम्प्रदायिक द्वेष की धधकती ज्वाला में अपने को जिन्दा झोंककर भी एकता की साध मन में लिये मर जाने वाले उस वेदना-मूर्ति गांधी का करुणामय चित्र आँखों के सामने से हटता ही नहीं है।

सत्याग्रह के आरंभ में दक्षिण अफ्रीका में जो प्रसव-वेदना हुई, वह अन्त में अनन्तगुना बढ़कर बिरला-हाउस में 30 जनवरी को समाप्त हो गयी। जन्म के पहले प्रसव-वेदना होती है और मृत्यु के समय तथा बाद में शोक और व्यथा का काल आता है। गांधीजी कहा करते थे कि मृत्यु नये जीवन का निमंत्रण है। किसी नये जन्म का पूर्व-प्रसव-काल ही उसे कहना चाहिए। जिस गांधी ने हमारे राष्ट्र-जीवन का भावी मनोरम स्वप्न देखा, उसके लिए जीवन भर साधना की, घोर तप किया, क्या वह 'हे राम' कहकर ही अन्त में उसे भूल गया? नहीं, प्रकृति के कण-कण में, भगवान् की इस सृष्टि के अणु-रेणु में, उसकी पुकार समा गयी और जिस प्रकार प्रसव-पीड़ा के अन्त में हम एक मंगल दृश्य देखने की सुकोमल आशा रखते हैं, उसी प्रकार इस घोर अन्धकार में भी हमें गांधी के इस महान्, अनूठे बलिदान से भी किसी नये 'मंगल-प्रभात' की स्वर्णिम झाँकी देखने के लिए आशान्वित रहना चाहिए।

गांधीजी का अन्तिम वेदना-काल उनके शरीर के साथ ही भस्मीभूत नहीं हो गया, स्वतंत्रता के इतने वर्ष बाद वह आज भी चल रहा है। वह वेदना आज भारत के प्रत्येक नर-नारी के निराश, व्याकुल, शिकायत भरे स्वर में अपने-आप मुखरित हो उठती है। हमें आस्था रखनी चाहिए कि इस वेदना से भारत के मांगल्य का अवश्य उदय होगा। 'गांधी के सपने का भारत' हमारी आँखों के सामने आयेगा। इस रूप में गांधी का पुनर्जन्म अवश्य होगा।

'आज नहीं तो कभी पूर्ण होगी यह आशा?'

'उत्तर-रामचरित' के रचयिता भवभूति की शैली की जब बहुत आलोचना होने लगी तब उन्होंने बड़े आत्मविश्वास से कहा था—

उत्पत्स्यते कोऽपि समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

—''कोई परवाह नहीं, अभी नहीं तो कभी-न कभी कोई कद्रदाँ पैदा होगा ही, क्योंकि काल की कोई सीमा नहीं और धरती माता का कोई ओर-छोर नहीं है।'' ❑

'फ्रीडम ऐट मिडनाइट' का पाँचवाँ सोपान

एक बूढ़ा आदमी और उसका टूटा हुआ सपना

स्वाधीनता आन्दोलन की चरम परिणति थी आजादी लेकिन उससे जुड़ा सदी का कुरूपतम सच-विभाजन। फ्रीडम ऐट मिडनाइट उसी का वृत्तान्त है। यह बड़ी-बड़ी परिघटनाओं वाला इतिहास नहीं, बल्कि छोटी-छोटी घटनाओं, मामूली विवरणों, हजारों दस्तावेजों और साक्षात्कारों से सजा सूक्ष्म इतिहास है।

हालाँकि लैरी कॉलिन्स और डोमीनिक लापियर दोनों विदेशी लेखक हैं, फिर भी जिस आत्मीयता और निष्पक्षता से उन्होंने विभाजन के गोपन रहस्यों, षड्यंत्रों, साम्प्रदायिक नंगई और ओछेपन को उजागर किया है, उसकी चतुर्दिक सराहना हुई है। दिलचस्प है कि इसमें कहीं भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पक्ष नहीं लिया गया।

विरले ही कोई गैर-साहित्यिक कृति क्लासिक बनती है लेकिन सच्चाई, पठनीयता और निष्पक्षता की बदौलत यह कृति क्लासिक बन गयी। भारतीय उपमहाद्वीप की कई पीढ़ियाँ इसे पढ़ेंगी। प्रस्तुत है इस औपन्यासिक कृति के पाँचवें अध्याय के सम्पादित अंश। –सं.

नेहरू और माउंटबैटेन

कमरे में कोई और नहीं था। बातचीत के इस सिलसिले में पाँच आदमी भाग लेने वाले थे, लुई माउंटबैटेन और चार भारतीय नेता। इन चारों हिन्दुस्तानियों ने अपने जीवन का ज्यादातर हिस्सा अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन चलाने और एक-दूसरे से बहस करने में बिताया था। वे चारो अधेड़ उम्र पार कर चुके थे। चारों वकील थे, जिन्होंने सबसे पहले अपनी अदालती बहस की योग्यता को लन्दन में कानून की सबसे ऊँची संस्था 'इंस ऑफ कोर्ट' में आजमाया था। उनमें से हर एक के लिए भारत के नये वाइसराय के साथ उसकी बातचीत उसके जीवन की सबसे बड़ी बहस होने वाली थी, एक ऐसी बहस जिसके लिए एक तरह से, उनमें से हर एक पिछली चौथाई शताब्दी से तैयारी करता आया था।

भारत के नेताओं को अपने देश की समस्याओं के किसी भी हल पर राजी करने की सारी कोशिशें अभी तक विफल रही थीं, लेकिन माउंटबैटेन को आशा थी कि अपने अध्ययन-कक्ष के एकान्त में उनको एक-एक करके समझा-बुझाकर शायद वह उस थोड़े समय में, जो उनके पास था, उनके बीच कोई समझौता करा सकें। उन्हें दूसरों को समझा-बुझाकर राजी कर लेने की अपनी क्षमता पर पूरा भरोसा था, सबसे बढ़कर उन्हें ये विश्वास था कि उनकी बात का तर्क अकाट्य है। वह कुछ ही सप्ताह में वह काम करके दिखाने की कोशिश करने जा रहे थे, जो उनसे पहले के वाइसराय कई वर्षों में भी पूरा नहीं कर पाये थे—भारत के नेताओं को किसी प्रकार की एकता के लिए राजी करना।

अपनी बास्कट के तीसरे काज में गुलाब का ताजा फूल लगाये उनके सामने इस समय जो आदमी बैठा हुआ था, वह भारत के राजनीतिक रंगमंच की जानी-मानी हस्तियों में से था। उनकी अपने ढंग की निराली चालाकी के बावजूद जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तित्व उतना ही रौबदार था, जितना भारत के वाइसराय का। उनके संवेदनशील चेहरे का भाव अभी एक क्षण बिलकुल फरिश्तों जैसा कोमल होता था और दूसरे ही क्षण बिलकुल पैशाचिक क्रोध की मुद्रा में बदल जाता था, अक्सर उस आदमी की एक झलक भी दिखायी दे जाती थी। माउंटबैटेन के चेहरे का भाव लगभग हमेशा ही बिल्कुल ही संयत और शान्त रहता था, लेकिन नेहरू की मुद्रा शायद ही कभी ऐसी रहती हो। उनके चेहरे के भाव और मुद्राएँ किसी झील के पानी पर से गुजरती हुई परछाइयों की तरह बदलती रहती थीं।

नेहरू और माउंटबैटेन की पहली मुलाकात के बाद से दुनिया बहुत बदल चुकी थी, उनकी अपनी जिन्दगियाँ भी बहुत बदल चुकी थीं, लेकिन उस भेंट में पारस्परिक सहानुभूति की दबी हुई लहर ने उनके बीच जो हार्दिकता पैदा कर दी थी, वह नेहरू ने शीघ्र ही वाइसराय के अध्ययन कक्ष में अनुभव की। और इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। हालाँकि माउंटबैटेन को यह मालूम नहीं था, पर उनके यहाँ आने में कुछ हद तक नेहरू का भी हाथ था।

इसके अलावा और भी बहुत-सी बातें थीं, जो तीन हजार वर्ष पुराने कश्मीरी परिवार के सपूत और प्रोटेस्टेंट धर्म के मानने वालों में सबसे पुराने शासक घराने का वंशज होने का दावा करने वाले इस आदमी के बीच घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित करने के लिए काफी थी। उन दोनों को बातें करने का बहुत चाव था और जब वे दोनों एक-दूसरे के साथ होते तो बिल्कुल दिल खोलकर बातें करते। अमूर्त विचारों की दुनिया में खोये रहने वाले नेहरू, माउंटबैटेन की व्यावहारिक चुस्ती के बहुत प्रशंसक थे। माउंटबैटेन भी नेहरू के सुसंस्कृत आचरण से, उनके विचारों की गूढ़ता से बहुत प्रेरणा प्राप्त करते थे। उन्होंने शीघ्र ही समझ लिया कि

जवाहरलाल नेहरू ही वह अकेले भारतीय नेता थे, जो ब्रिटेन और नये भारत के बीच सम्बन्ध बनाये रखने की उनकी आकांक्षा में उनका साथ दे सकते थे और उसे समझ सकते थे।

अपनी स्वाभाविक स्पष्टवादिता के साथ माउंटबैटेन ने उन्हें बता दिया कि उन्हें बहुत ही भयानक जिम्मेदारी सौंपी गयी थी और वह भारत की समस्या को शुद्ध यथार्थनिष्ठता की भावना से हल करने की कोशिश करेंगे। आपस में बातचीत करते हुए वे दोनों बहुत जल्दी ही दो मुख्य बातों पर सहमत हो गये। एक तो यह कि रक्तपात से बचने के लिए जल्दी ही कोई निर्णय करना जरूरी है, और दूसरे यह कि भारत का विभाजन बहुत ही दुखद घटना होगी।

इसके बाद नेहरू ने उस दूसरे भारतीय नेता के कार्य की चर्चा की, जो उनके बाद माउंटबैटेन के अध्ययन-कक्ष में आने वाला था, उस प्रायश्चित यात्री के काम की, जो नोआखाली और बिहार में अकेला अपनी राह पर चला जा रहा था। नेहरू ने कहा कि जिस आदमी के वह इतने लम्बे अरसे से भक्त रहे हैं, 'वह भारत के शरीर पर एक के बाद दूसरे घाव पर मरहम लगाकर उसे अच्छा करने की कोशिश करता घूम रहा है, बजाय इसके कि वह रोग का निदान कर पूरे शरीर को चंगा करने में भाग ले।'

नेहरू के शब्दों में इस बात की झलक मिलती थी कि भारत के मुक्तिदाता और उसके निकटतम सहयोगियों के बीच की खाई लगातार चौड़ी होती जा रही थी, इन शब्दों से माउंटबैटेन की समझ में यह बात भी बहुत अच्छी तरह आ गयी कि दिल्ली में उन्हें किस ढंग से काम करना होगा। अगर वह भारत के नेताओं को देश की एकता बनाये रखने के लिए राजी न कर सके, तो वह उन्हें उसका विभाजन कर देने के लिए राजी करने की कोशिश करेंगे। गांधी बँटवारे के कट्टर विरोधी थे और यह माउंटबैटन के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा आने वाली थी। ऐसी हालत में उनके लिए एक मात्र आशा यह रह जायेगी कि वह कांग्रेस के नेताओं को राजी कर सकें कि वे अपने नेता से सम्बन्ध तोड़ लें और अपने देश की गुत्थी सुलझाने के एकमात्र हल के रूप में देश का बँटवारा मान लें। अगर ऐसी हालत पैदा हो गयी तो सारा दारोमदार नेहरू पर रहेगा। माउंटबैटेन के लिए बेहद जरूरी था कि यह एक मित्र उनके साथ रहे। माउंटबैटेन ने सोचा कि शायद नेहरू की ही इतनी साख है कि वह गांधी से टक्कर ले सकें।

अब नेहरू के शब्दों से यह संकेत भी मिल गया था कि गांधी और उनकी पार्टी के नेताओं के बीच मतभेद हैं। माउंटबैटेन को इस खाई को और चौड़ा करके उसका फायदा उठाना पड़ सकता था। उन्होंने नेहरू का समर्थन प्राप्त करने के लिए कोई कोशिश उठा नहीं रखी। उनके वशीकरण अभियान का किसी दूसरे भारतीय नेता पर उतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ने वाला था, जितना कि उस यथार्थवादी कश्मीरी ब्राह्मण पर। उस दिन एक ऐसी मित्रता का सूत्रपात हो रहा था, जो आगे चलकर निर्णायक सिद्ध होने वाली थी।

नेहरू को दरवाजे तक छोड़ने के लिए जाते हुए माउंटबैटेन ने उनसे कहा—'मिस्टर नेहरू, मैं चाहता हूँ कि आप मुझे ब्रिटिश राज का बोरिया-बिस्तर समेटने के लिए भेजा गया अन्तिम ब्रिटिश वाइसराय न समझकर नये भारत की ओर जाने का मार्ग दिखाने वाला पहला वाइसराय समझें।' नेहरू ने मुड़कर उस आदमी को देखा, जिसे वह वाइसराय की गद्दी पर बिठाना चहते थे, और फिर चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट के साथ उन्होंने कहा, 'अच्छा, अब मेरी समझ में आया कि जब लोग आपके आकर्षण को खतरनाक बताते हैं तो उसका क्या मतलब होता है।'

× × ×

गांधी और माउंटबैटेन

एक बार फिर वह नंगा फकीर 'सम्राट के प्रतिनिधि से बराबरी के साथ समझौते की बातचीत करने के लिए' वाइसराय के अध्ययन-कक्ष में बैठा हुआ था।

अपनी बगल में बैठी हुई इस मशहूर हस्ती को बड़े ध्यान से देखते हुए माउंटबैटेन के मन में यह विचार उठा कि, 'यह आदमी तो बिल्कुल छोटी-सी चिड़िया जैसा लगता है, मेरी आराम-कुर्सी पर बैठी हुई प्यारी-सी उदास गौरैया जैसा।'

अनोखी जोड़ी थी; एक तरफ वह शाही नौसैनिक, जिसे पूरी तड़क-भड़क के साथ अपनी वर्दी पहनने का बड़ा चाव था और दूसरी तरफ वह बूढ़ा हिन्दुस्तानी, जो अपने नंगे बदन को ढंकने के लिए एक सूती चादर से ज्यादा और कुछ इस्तेमाल करने को तैयार नहीं था। गोरे-चिट्टे

माउंटबैटेन को भारत भेजने का सुझाव दिसम्बर 1946 में लन्दन में क्रिप्स और मेनन की एक गुप्त बातचीत के दौरान सामने आया था। मेनन एक स्पष्टवादी वामपंथी नेता थे और नेहरू से उनके बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध थे। मेनन ने क्रिप्स और नेहरू के सामने सुझाव रखा था कि जब तक वेवेल वाइसराय रहेंगे, तब तक कांग्रेस भारत में किसी प्रगति की कोई आशा नहीं कर सकती। उन्होंने ही माउंटबैटेन का नाम लिया था, जिनके प्रति नेहरू के मन में सबसे अधिक सम्मान था। इस बात को अच्छी तरह जानते हुए कि भारत के मुस्लिम नेताओं को अगर पता चल गया कि माउंटबैटेन की नियुक्ति का सुझाव कहाँ से आया था तो उनकी सारी उपयोगिता समाप्त हो जायेगी, दोनों नेताओं ने यह तय किया था कि वे अपनी बातचीत का भेद किसी को नहीं बतायेंगे।

खूबसूरत माउंटबैटेन, जिनके कसरती शरीर के अंग-अंग से फुर्ती उबली पड़ती थी और गांधी, जिनका दुबला-पतला ढाँचा आराम-कुर्सी में धंसकर रह गया था। एक अहिंसा का पुजारी और दूसरा पेशेवर सिपाही; एक रईसों का रईस और दूसरा एक ऐसा आदमी, जिसने अपना सारा जीवन पृथ्वी के सबसे कंगाल लोगों जैसी दरिद्रता की जिन्दगी बसर करने का व्रत ले रखा था। एक ओर माउंटबैटेन थे, जिन्होंने युद्ध के दौरान संचार की यन्त्र-विद्या में पूरी निपुणता प्राप्त कर ली थी और जो हमेशा किसी ऐसे इलेक्ट्रानिक यन्त्र की खोज में रहते थे, जो उनके नेतृत्व में लड़ने वाले लाखों सिपाहियों के साथ उनकी सम्पर्क-व्यवस्था को बेहतर बना सके और दूसरी ओर गांधी थे, वह कृषकाय मसीहा, जो इस सारे ताम-झाम को सन्देह की दृष्टि से देखते थे, फिर भी जिन्होंने अपनी जनता के साथ ऐसा सम्पर्क स्थापित कर लिया था, जैसा इस शताब्दी में कोई दूसरा आदमी नहीं कर पाया था।

इन सभी बातों से, उनकी पृष्ठभूमि की हर चीज से, ऐसा लगता था कि दोनों आदमी पैदा ही इसलिए हुए हैं कि उनके बीच मतभेद रहें। फिर भी आने वाले महीनों के दौरान शान्ति के पुजारी गांधी को, उनके एक निकटतम साथी के शब्दों में, उस पेशेवर सिपाही की आत्मा में 'कुछ उन्हीं नैतिक मूल्यों की गूँज सुनायी दी, जो स्वयं उनकी आत्मा को आन्दोलित करते रहते थे।' और माउंटबैटेन को भी गांधी से इतना गहरा लगाव हो गया कि उनकी मृत्यु पर उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि 'इतिहास में महात्मा गांधी का नाम उसी श्रद्धा के साथ लिया जायेगा, जैसे ईसा और बुद्ध का लिया जाता है।'

वाइसराय ने डरते-डरते गांधी से गम्भीर बातचीत का सिलसिला शुरू किया। वह यह तो मानने को तैयार ही नहीं थे कि उनके पास बैठा हुआ दुबले-पतले छोटे-से शरीर वाला आदमी, जो 'गौरैया की तरह चहक रहा था,' भारत के संकट का हल ढूँढ़ने में उनकी मदद कर सकता है, लेकिन इतना जानते थे कि यह आदमी हल ढूँढने की कोशिशों पर पानी जरूर फेर सकता था। इससे पहले भी समझौता कराने की कोशिश करने वाले कई अंग्रेजों की उम्मीदें इस आदमी के अनबूझ व्यक्तित्व के चक्करों में उलझकर चकनाचूर हो चुकी थी। गांधी ने ही 1942 में क्रिप्स को खाली हाथ लन्दन वापस भेज दिया था। एक सिद्धान्त की बात पर उनके टस से मस न होने की वजह से भारत की गुत्थी को सुलझाने की वेवेल की सारी कोशिशें बेकार हो गयी थीं। उसके बाद नयी कोशिश शुरू की गयी। कैबिनेट मिशन ने यह काम शुरू किया, और कहा जाता था कि उसी योजना को माउंटबैटेन ने अपना आधार बनाया था। लेकिन इस कैबिनेट मिशन की कोशिश को भी गांधी की चालों ने विफल कर दिया। अभी कल ही शाम को गांधी ने एक बार फिर कहा था कि भारत का बँटवारा 'मेरी लाश पर होगा। अपने जीते जी, मैं कभी भारत के बँटवारे के लिए तैयार नहीं हो सकता।'

माउंटबैटेन को इस बात का दुख था कि अगर न चाहते हुए भी उन्हें भारत का बँटवारा करना पड़ा तो उन्हें अपना यह फैसला गांधी पर जबरदस्ती थोपना पड़ेगा। इसके लिए उन्हें गांधी को शारीरिक रूप से नहीं तोड़ना होगा, बल्कि उनका दिल तोड़ना पड़ेगा।

अपनी बातचीत की शुरूआत सही ढंग से करने के उद्देश्य से माउंटबैटेन ने गांधी से कहा कि जोर-जबरदस्ती के आगे कभी न झुकना हमेशा से अंग्रेजों की नीति रही, लेकिन उनके अहिंसा के आन्दोलन के आगे अंग्रेजों को झुकना पड़ा और अब चाहे जो भी हो जाये, अंग्रेज भारत छोड़कर चले जायेंगे।

'कुछ समय बाद आप लोगों के यहाँ से चले जाने में एक ही बात का महत्व है'—गांधी ने उत्तर दिया। उन्होंने याचना की, 'भारत का बँटवारा करके न जाइये।' अहिंसा का पुजारी अनुरोध कर रहा था, 'भारत के टुकड़े न कीजिये, चाहे उसके टुकड़े करने से इन्कार करने की वजह से 'खून की नदियाँ' ही क्यों न बह जायें।'

माउंटबैटेन ने गांधी को विश्वास दिलाया, 'भारत का बँटवारा तो वह हल है, जिसका सहारा मैं सबसे बाद में लेना चाहता हूँ। लेकिन उसके अलावा और क्या-क्या रास्ते हैं?'

गांधी के पास एक रास्ता है। वह देश को बँटने से बचाने के लिए अपना सब-कुछ दाँव पर लगा देने को तैयार थे, यहाँ तक कि वह वैसे फैसले के लिए भी तैयार थे, जैसा सुलेमान ने दिया था। उनका कहना था कि बच्चे के दो टुकड़े करने के बजाय उसे मुसलमानों को ही दे दो। वह इसके लिए तैयार थे कि उनके प्रतिद्वंद्वी जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग से सरकार बनाने को कहा जाये और तीस करोड़ हिन्दुओं को उनके शासन के अधीन कर दिया जाये, फिर सत्ता इस सरकार के हाथों में सौंप दी जाये। जिन्ना जो हिस्सा माँगते थे, उसके बजाय उन्हें पूरा हिन्दुस्तान ही दे दिया जाये।

माउंटबैटेन बँटवारे से बचने के लिए कोई भी उपाय करने को तैयार थे। उनकी हालत बिल्कुल वैसी ही थी, जैसे डूबते को तिनके का सहारा। गांधी का यह सुझाव बिल्कुल परियों की कहानी जैसी बात लगती थी, लेकिन उनके कुछ और विचार भी तो ऐसे ही थे और वे कामयाब भी हुए थे।

'आपको यह कैसे भरोसा है कि खुद आपकी कांग्रेस पार्टी इसे मान लेगी?' उन्होंने गांधी से पूछा।

गांधी ने जवाब दिया, 'कांग्रेस हर चीज से बढ़कर यह चाहती है कि देश का बँटवारा न हो। वह उसे रोकने के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जायेगी।'

माउंटबैटेन ने पूछा कि इस पर जिन्ना का रवैया क्या होगा?

गांधी ने हँसकर जवाब दिया, 'अगर आप उनसे कहेंगे कि यह सुझाव मेरा है तो उनका जवाब होगा : 'काइयाँ गांधी'।'

माउंटबैटेन एक क्षण तक चुप रहे। गांधी के सुझाव में बहुत कुछ ऐसा था, जिसे व्यवहार में पूरा नहीं किया जा सकता था। वह अभी इतनी जल्दी अपनी साख दाँव पर लगाने को तैयार नहीं थे। लेकिन वह किसी ऐसे विचार को, जिससे भारत एक बना रह सकता हो, अच्छी तरह सोच-विचार किये बिना ठुकरा देने को भी तैयार नहीं थे।

'देखिये', उन्होंने गांधी से कहा, 'अगर आप मुझे औपचारिक रूप से इस बात का आश्वासन दिला दें कि कांग्रेस आपकी इस योजना को मान लेगी, कि वह पूरी लगन के साथ इस योजना को सफल करने की कोशिश करेगी, तो मैं इस सुझाव पर विचार करने को तैयार हूँ।'

उनके ये शब्द सुनकर गांधी अपनी कुर्सी पर से लगभग बिल्कुल उछल पड़े। उन्होंने माउंटबैटेन को विश्वास दिलाया, 'मैं पूरी लगन के साथ काम करने को तैयार हूँ। अगर आप यह फैसला कर लें तो मैं लोगों से इसे मनवाने के लिए देश के कोने-कोने का दौरा करूँगा।'

कुछ ही घण्टे बाद जब गांधी शाम की अपनी प्रार्थना-सभा में जा रहे थे तो एक भारतीय पत्रकार ने उनसे बात की। उसे ऐसा लगा कि महात्माजी 'खुशी से फूले नहीं समा रहे थे।' जहाँ प्रार्थना-सभा होनी थी, उसके पास पहुँचकर गांधी अचानक उस पत्रकार की ओर मुड़े और बड़ी उल्लास-भरी मुस्कुराहट के साथ उन्होंने उसके कान में कहा, 'मैं समझता हूँ कि मैंने धारा का रुख मोड़ दिया है।'

'अरे, यह आदमी तो मुझ पर धौंस जमाने की कोशिश कर रहा है।' लुई माउंटबैटेन ने बड़े अविश्वास के भाव से सोचा। उनके सामने बैठी हुई इस चट्टान जैसी हस्ती से टकराकर उनका वशीकरण अभियान अचानक ठप हो गया था। खादी की धोती अपने कंधों पर लबादे की तरह लपेटे हुए, चमकती हुई गंजी चाँद और चढ़ी हुई त्यौरियों वाला जो यह आदमी कुर्सी में फँसा हुआ बैठा था, वह वाइसराय को भारतीय राजनीतिज्ञ की अपेक्षा रोमन सीनेटर ज्यादा लग रहा था।

× × ×

सरदार और माउंटबैटेन

लेकिन भारत के असली राजनीतिज्ञ वल्लभभाई पटेल ही थे। वह कांग्रेस पार्टी को बड़ी सख्ती और बेरहमी के साथ चलाते थे। यों तो चारों भारतीय नेताओं में से उनसे ही निबटना माउंटबैटेन के लिए सबसे आसान होना चाहिए था। वाइसराय की तरह ही वह भी एक व्यवहार कुशल आदमी थे, जो अपने मतलब की बात को फौरन पकड़ लेते थे। सौदेबाजी जमकर करते थे, लेकिन हकीकत को पहचानते भी थे। उन दोनों के बीच तनाव इतना वास्तविक था, इनता ठोस था कि माउंटबैटेन को ऐसा लग रहा था कि वह हाथ बढ़ाकर उस तनाव को छू सकते हैं।

इस तनाव का उन बड़ी-बड़ी समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं था, जो भारत के सामने थीं। इस तनाव की जड़ थी कागज की एक पर्ची, किसी की नियुक्ति के बारे में सरदार पटेल के गृह मंत्रालय की ओर से भेजी गयी कोई सरकारी टिप्पणी। लेकिन पटेल ने जिस ढंग से वह टिप्पणी लिखी थी, उनके अन्दाज से माउंटबैटेन को ऐसा लगा कि वह जानबूझकर उनकी सत्ता को चुनौती दे रहे हैं।

पटेल अपने अड़ियलपन के लिए मशहूर थे, यह शोहरत उनकी उम्र भर की कमाई थी। माउंटबैटेन ने सहज ही अपने मन में यह जरूरत महसूस की कि उनसे बात करने के लिए आये हुए इस नये आदमी की वह थाह ले लें, यह अन्दाजा लगा लें कि उसे किस हद तक दबाया जा सकता है। माउंटबैटेन को पूरा यकीन था कि उनकी मेज पर रखा हुआ कागज का वह टुकड़ा उनकी एक परीक्षा थी, गम्भीर समस्याओं से उलझना आरम्भ करने से पहले उन्हें पटेल के साथ इस इम्तहान से गुजरना ही था।

वाइसराय ने उस कागज को देखा, जिसका उन्होंने बहुत बुरा माना था, और फिर उसे मेज के पार पटेल के सामने सरका दिया। बड़े शान्त भाव से उन्होंने पटेल से उसे वापस ले लेने को कहा। पटेल ने साफ इन्कार कर दिया।

माउंटबैटेन ने एक क्षण तक भारतीय नेता को बड़े ध्यान से देखा। उन्हें इस आदमी और जिस संगठन का वह प्रतिनिधि था, उस संगठन के समर्थन की जरूरत पड़ने वाली थी। लेकिन उन्हें इसका भी पूरा यकीन था कि अगर इस वक्त उन्होंने उससे सीधी टक्कर न ली तो यह समर्थन उन्हें कभी नहीं मिलेगा।

'अच्छी बात है', माउंटबैटेन ने कहा, 'मैं आपको बताऊँ, मैं क्या करने जा रहा हूँ। मैं अपना हवाई जहाज बुलवाने जा रहा हूँ।'

लार्ड माउंटबैटेन 22 मार्च, 1947 को भारत को शीघ्र ही मिलने वाली स्वतंत्रता की व्यवस्था करने के लिए दिल्ली पहुँचे। महात्मा गांधी और अन्य भारतीय नेताओं से लम्बे और अक्सर मुश्किलों से भरे बहस मुबाहिसों के बाद माउंटबैटेन ने 3 जून, 1947 को सब भागीदारों का समर्थन भारत के दो टुकड़े कर दो नये राष्ट्र बनाने के लिए पा लिया। माउंटबैटेन के साथ बैठे थे–मुहम्मद अली जिन्ना, लियाकत अली खान, अब्दुर्रब निश्तर और कांग्रेस की ओर से थे–जवाहरलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और आचार्य कुपालानी। सिक्खों के प्रतिनिधि के रूप में बलदेव सिंह उपस्थित थे।

'लेकिन क्यों?' पटेल ने पूछा।

'क्योंकि मैं जा रहा हूँ', माउंटबैटेन ने जवाब दिया। 'पहली बात तो यह कि यह नौकरी मुझे चाहिए ही नहीं थी। मैं तो तलाश में ही था कि आप जैसा कोई आदमी मुझे मिल जाये तो मुझे इसे छोड़ देने और एक असम्भव स्थिति से छुटकारा पाने का बहाना मिल जाये।'

'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता!' पटेल ने घबराकर कहा।

'नहीं हो सकता?' माउंटबैटेन ने जवाब दिया। 'आप कहीं इस भ्रम में तो नहीं हैं कि मैं यहाँ रहकर आप जैसे आदमी की धौंस

सहता रहूँगा? अगर आप समझते हैं कि आप मेरे साथ बदतमीजी से पेश आयेंगे, जैसा चाहेंगे सलूक करेंगे और मैं चुपचाप बर्दाश्त कर लूँगा तो यह आपकी भूल है। या तो आप यह नोट वापस लेंगे या फिर हम दोनों में से एक को इस्तीफा देना पड़ेगा। और मैं आपको इतना बता दूँ कि अगर मैं गया तो जाने से पहले मैं आपके प्रधानमंत्री और जिन्ना साहब को यह भी समझा दूँगा कि मैं क्यों जा रहा हूँ। उसके बाद हिन्दुस्तान में जो उथल-पुथल मचेगी, जो खून-खराबा होगा, उसकी जिम्मेदारी किसी और पर नहीं, आपके कंधों पर होगी।'

पटेल को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वह माउंटबैटेन को घूरते रह गये।

उन्होंने ऐलान किया कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि माउंटबैटेन एक ही महीने काम करने के बाद वाइसराय की गद्दी ठुकरा दें।

'मिस्टर पटेल', माउंटबैटेन ने जवाब दिया, 'आप शायद मुझे जानते नहीं हैं। या तो आप अपना नोट यहीं खड़े-खड़े वापस लेंगे या फिर मैं प्रधानमंत्री को बुलवाकर अपने इस्तीफे का ऐलान कर दूँगा।'

काफी देर तक चुप्पी रही। आखिरकार पटेल ने आह भरकर कहा, 'देखिये, अफसोस की बात तो यह है कि मैं समझता हूँ कि आप सचमुच ऐसा कर सकते हैं।'

'आप ठीक समझते हैं, मैं पक्का इरादा कर चुका हूँ', माउंटबैटेन ने जवाब दिया।

पटेल ने हाथ बढ़ाकर उस कागज को उठा लिया, जो सारे झगड़े की जड़ था और उसे धीरे-धीरे फाड़ डाला।

× × ×

जिन्ना और माउंटबैटेन

अप्रैल का महीना था और तीसरे पहर का समय, फिर भी वाइसराय के अध्ययन-कक्ष में घरघराते हुए एयर-कंडीशनर की कोई जरूरत नहीं महसूस हो रही थी। मुस्लिम लीग के नेता के रूखेपन के कारण ऐसा लगता था कि सारे वातावरण पर पाला पड़ गया है, वह कभी किसी को निकटता का आभास होने ही नहीं देते थे। जिस क्षण वह आये थे, तभी से माउंटबैटेन को ऐसा लग रहा था कि मुहम्मद अली जिन्ना का रवैया बिल्कुल बर्फ की सिल्ली की तरह जमा हुआ सर्द और सख्त था। उनके चेहरे पर दंभ और अरुचि की स्पष्ट झलक थी।

चारों भारतीय नेताओं में से जिन्ना को राजी करना सबसे ज्यादा जरूरी था। आगे चलकर भारत की दुविधा का हल अन्त में उन्हीं पर निर्भर था। वाइसराय के अध्ययन कक्ष में वह सबसे बाद में आये। पच्चीस वर्ष बाद लुई माउंटबैटेन ने जब इस घटना को याद किया तो उनके स्वर में उस समय की पुरानी व्यथा की गूँज बाकी थी। उन्होंने कहा, 'जब तक मैं मुहम्मद अली जिन्ना से नहीं मिला था, तब तक मुझे अन्दाजा ही नहीं था कि भारत में जो जिम्मेदारी मुझे सौंपी गयी थी, उसे पूरा करना कितना असम्भव काम था।'

अध्ययन-कक्ष में पहुँचते ही उन्होंने माउंटबैटेन से साफ कह दिया कि मैं आपको यह बताने आया हूँ कि मैं क्या मानने को तैयार हूँ। माउंटबैटेन ने जैसा गांधी के साथ किया था, वैसा ही जिन्ना के साथ भी किया। उन्होंने हाथ मिलाकर उन्हें टोकते हुए कहा 'मिस्टर जिन्ना, मैं अभी शर्तों पर बहस करने के लिए तैयार नहीं हूँ। पहले हम एक-दूसरे से परिचित हो लें।'

इसके बाद माउंटबैटेन ने अपने व्यक्तित्व के सारे आकर्षण का सहारा लेकर बड़े जोश के साथ अपने वशीकरण अभियान की दिशा मुस्लिम नेता की ओर मोड़ दी। लेकिन जिन्ना को न पिघलना था, न पिघले। सबसे अलग-थलग रहने वाले आदमी के लिए, जो आसानी से किसी को मुँह नहीं लगाता था और अपने निकटतम सहयोगियों के साथ भी कभी अपनी जिद से टलने को तैयार नहीं होता था, उसके लिए एक बिल्कुल ही अजनबी आदमी के सामने अपने जीवन और अपने व्यक्तित्व के बारे में बात करने का विचार ही बेहद अरुचिकर था।

माउंटबैटेन भी अपने मिलनसार और मोहक व्यक्तित्व की सारी संचित शक्ति लगाकर हारी हुई बाजी खेलते ही रहे। उन्हें लग रहा था कि इस खींचातानी में न जाने कितने घण्टे बीत गये हैं, लेकिन उन्हें जवाब में उस आदमी के मुँह से हूँ-हाँ के अलावा कुछ भी सुनने को न मिला। आखिरकार लगभग दो घण्टे बाद जिन्ना नरम पड़े। जब मुस्लिम नेता अध्ययन-कक्ष से विदा हुए तो माउंटबैटेन ने अपने प्रेस-सलाहकार एलेन कैंपबेल-जॉनसन से कहा—'हे भगवान्, आदमी था कि बर्फ की चट्टान! सारी मुलाकात तो उसे पिघलाने की कोशिश में ही बीत गयी।'

अप्रैल 1947 के पहले पखवाड़े में माउंटबैटेन और जिन्ना की छः ऐसी मुलाकातें हुईं, जिन पर सारा दारोमदार था। कुल मिलाकर उनकी बातचीत मुश्किल से दस घण्टे हुई होगी, लेकिन अन्त में भारत की दुविधा का हल इसी बातचीत के आधार पर निकला। इन मुलाकातों के दौरान माउंटबैटेन का सबसे बड़ा हथियार था उनका 'अपनी इस योग्यता पर बेहद घमण्ड कि मैं लोगों को सही काम करने के लिए मना सकता हूँ, इसलिए नहीं कि मुझमे दूसरों को समझाने-बुझाने का गुण है, बल्कि इससे भी बढ़कर इसलिए कि मैं सच्चाई को उनके लिए सबसे अधिक अनुकूल रूप में पेश करता हूँ।' जैसा कि उन्होंने इस घटना को याद करते हुए बाद में कहा, उन्होंने जिन्ना को बँटवारे की हठधर्मी से डिगाने के लिए 'हर तरकीब इस्तेमाल की, हर तरह से उनसे अनुरोध किया।' लेकिन जिन्ना टस से मस न हुए। उन पर पाकिस्तान के असम्भव सपने को साकार करने का ऐसा जुनून सवार था कि कोई भी दलील उन्हें अपनी जगह से हिला नहीं सकती थी।

जिन्ना की अकड़ की दो बुनियादें थीं। एक तो उन्होंने अपने-आपको मुस्लिम लीग का डिक्टेटर मनवा लिया था। उनके नीचे कुछ लोग थे, जो शायद समझौते की बातचीत करने के लिए तैयार हो जाते, लेकिन जब तक जिन्ना जिन्दा थे, ये लोग अपनी जबान नहीं खोल सकते थे। दूसरी, इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि साल भर पहले कलकत्ता की सड़कों पर बहे खून की याद अभी तक ताजा थी।

माउंटबैटेन और जिन्ना एक बात पर तो शुरू से ही सहमत थे—जो भी करना हो, बहुत जल्दी करना होगा। जिन्ना ने एकलान किया कि

वह समय बीत गया, जब समझौता मुमकिन था। अब तो बस एक ही हल था कि जल्दी-से-जल्दी 'ऑपरेशन' कर दिया जाये। उन्होंने चेतावनी दी कि अगर ऐसा न किया गया तो हिन्दुस्तान मिट जायेगा।

जब माउंटबैटेन ने यह चिन्ता व्यक्त की कि बँटवारे के बाद कहीं हिंसा और खून-खराबा न हो तो जिन्ना ने उन्हें आश्वस्त कर दिया कि एक बार बँटवारा हो जाने पर सारी मुसीबतें दूर हो जायेंगी और हिन्दुस्तान के दोनों टुकड़े मेल-जोल के साथ हँसी-खुशी से रहेंगे। जिन्ना ने माउंटबैटेन से कहा कि यह बिल्कुल वैसी ही बात होगी, जैसी कि अदालत के एक मुकदमे में हुई थी, जिसकी वह पैरवी कर रहे थे। दो भाइयों के बीच उनके बाप की वसीयत में उन्हें दिये गये हिस्सों के बारे में कुछ झगड़ा था। लेकिन दो साल बाद जब अदालत ने उनका झगड़ा निबटा दिया तो दोनों में बहुत गहरी दोस्ती हो गयी। उन्होंने वाइसराय को यकीन दिलाया कि हिन्दुस्तान में भी यही होगा।

जिन्ना का आग्रह था कि हिन्दुस्तान के मुसलमान एक कौम हैं, जिनकी 'अलग सभ्यता और संस्कृति, अलग भाषा और साहित्य, अलग कला और अलग ढंग की इमारतें, अलग कानून और नैतिक सिद्धान्त, अलग रीति-रिवाज और अलग तारीख-महीने, अलग इतिहास और अलग परम्पराएं हैं।'

जिन्ना ने दावे के साथ कहा, 'हिन्दुस्तान कभी सही माने में एक कौम नहीं रहा। सिर्फ नक्शे पर देखने में वह एक लगता है। मैं गाय का गोश्त खाना चाहता हूँ और हिन्दू मुझे गाय मारने से रोकता है। हर बार जब कोई हिन्दू मुझसे हाथ मिलाता है तो उसे जाकर अपने हाथ धोने पड़ते हैं। मुसलमानों में और हिन्दुओं में अगर कोई चीज समान है, तो वह है अंग्रेज की गुलामी।'

माउंटबैटेन ने बाद में बताया कि उनकी बहस गोल-गोल चक्कर काटते रहने का एक रोचक और कुछ दुखान्त नाटक जैसा खेल बनकर रह गयी। जिन्ना अपनी हर बात पर अड़े ही रहे। एकता के दृढ़ समर्थक माउंटबैटेन हर पहलू से जिन्ना पर वार करते रहे, यहाँ तक कि उन्हें डर लगने लगा कि कहीं 'मैं उस बूढ़े सज्जन को पागल न कर दूँ।'

जिन्ना बँटवारे के सुझाव को स्वाभाविक हल मानते थे। लेकिन इस बँटवारे के बाद जो राज्य बने, उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके। इसलिए जिन्ना की दलील यह थी कि हिन्दुस्तान के दो बड़े सूबे, पंजाब और बंगाल, इसके बावजूद कि दोनों ही में बहुत बड़ी हिन्दू आबादी रहती थी, पाकिस्तान में शामिल कर दिये जायें।

माउंटबैटेन यह नहीं मान सकते थे। पाकिस्तान के पक्ष में जिन्ना की दलील की बुनियाद यह थी कि हिन्दुस्तान के अल्पसंख्यक मुसलमानों पर बहुसंख्यक हिन्दुओं की हुकूमत नहीं होनी चाहिए। फिर बंगाल और पंजाब के अल्पसंख्यक हिन्दुओं को मुस्लिम राज्य में रखना किस बुनियाद पर उचित ठहराया जा सकता था? अगर जिन्ना इस्लामी राज्य पाने के लिए हिन्दुस्तान के बँटवारे पर अड़े रहे तो उन्हीं की दलील की बुनियाद पर माउंटबैटेन को भी इस सौदे की एक शर्त के रूप में मजबूरन बंगाल और पंजाब का भी बँटवारा करना पड़ेगा।

जिन्ना ने इसका विरोध किया कि इस तरह उन्हें जो पाकिस्तान मिलेगा, वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकेगा, वह 'दीमक का खाया हुआ पाकिस्तान' होगा। माउंटबैटेन ने, जो उन्हें किसी भी तरह का पाकिस्तान नहीं देना चाहते थे, मुस्लिम नेता से साफ कह दिया कि अगर आप समझते हैं कि जो राष्ट्र आपको मिलेगा, वह इतना 'दीमक का खाया हुआ' होगा तो बेहतर है कि आप उसे न लें।

'ओह', जिन्ना ने जवाब दिया, 'योर एक्सीलेंसी, आप बात नहीं समझते। आदमी हिन्दू या मुसलमान होने से पहले पंजाबी या बंगाली होता है। उनका एक ही इतिहास, एक ही भाषा, एक ही संस्कृति और एक ही अर्थतंत्र होता है। आपको उन्हें बाँटना नहीं चाहिए। अगर आपने ऐसा किया तो झगड़ा और खून-खराबा कभी खत्म ही नहीं होगा।'

'जिन्ना साहब, मैं आपकी बात बिल्कुल मानता हूँ।'

माउंटबैटेन को जो हिदायतें दी गयीं थीं, उनमें इस बात की तरफ इशारा भी नहीं किया गया था कि जिन्ना बहुत जल्दी मरने वाले हैं। जिन्ना के मरने के 25 वर्ष बाद माउंटबैटेन ने कहा कि अगर यह बात उन्हें उस वक्त मालूम हो जाती तो वे भारत में दूसरे ही ढंग से काम करते। जिन्ना के जीवन के अन्तिम छः महीनों में मुस्लिम लीग के दूसरे सबसे बड़े नेता लियाकत अली खाँ को उनकी बीमारी का पता था। जिन्ना की बेटी मिसेज वाडिया ने एक इंटरव्यू के दौरान बताया कि उनके वालिद को टी.बी. थी, यह उन्हें भी उनके मरने के बाद ही पता चला।

'आप मानते हैं?'

'बिल्कुल', माउंटबैटेन ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, 'आदमी हिन्दू या मुसलमान होने से पहले पंजाबी या बंगाली ही नहीं होता, बल्कि वह कुछ और होने से पहले हिन्दुस्तानी होता है। आपने तो हिन्दुस्तान की एकता की ऐसी दलील पेश कर दी है, जिसकी काट नामुमकिन है।'

'लेकिन आप बात बिल्कुल नहीं समझे', जिन्ना ने जवाबी वार किया और बात फिर वहीं आ गयी, जहाँ से शुरू हुई थी।

माउंटबैटेन जिन्ना की हठधर्मी देखकर

सन्नाटे में आ गये। उन्होंने बाद में इस घटना को याद करते हुए बताया, 'मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि एक पढ़ा-लिखा, समझदार, बैरिस्टरी पास आदमी अपने दिमाग को इस तरह बन्द कर सकता है, जैसे जिन्ना ने कर लिया था। ऐसा नहीं था कि बात उनकी समझ में न आती हो। बात वह समझते थे, लेकिन अचानक बीच में एक परदा-सा आ जाता था। इस पूरे किस्से में वही सारे झंझट की जड़ थे। दूसरों को तो समझाया-बुझाया जा सकता था, लेकिन जिन्ना को नहीं। उनकी जिन्दगी में कुछ भी करना नामुमकिन था।'

उनकी बातचीत 10 अप्रैल को, माउंटबैटेन के भारत आने के तीन हफ्ते से भी कम ही समय के बाद, अपनी चरम अवस्था में पहुँची। दो घण्टे तक माउंटबैटेन ने भारत की एकता बनाये रखने के लिए जिन्ना से याचना की, उनकी खुशामद की, उनसे बहस की और हर तरह से पैरवी की। अपना सारा वाक्-चातुर्य इस्तेमाल करके उन्होंने यह चित्र खींचा कि हिन्दुस्तान कितना महान बन सकता है। अलग-अलग जातियों और धर्मों के 40 करोड़ लोग एक केन्द्रीय संघ की सरकार के माध्यम से एकता के सूत्र में बँधे हुए होंगे, जब यहाँ नये-नये उद्योग खुलेंगे तो उसकी आर्थिक शक्ति कितनी अधिक हो जायेगी, और विश्व की समस्याओं में वह सुदूर-पूर्व में सबसे प्रगतिशील घटक के रूप में कितनी बड़ी भूमिका अदा कर सकेगा! जिन्ना यह तो नहीं चाहते होंगे कि यह सब-कुछ नष्ट कर दिया जाये, इस उप-महाद्वीप का अस्तित्व एक घटिया दर्जे के राष्ट्र जैसा रह जाये। लेकिन जिन्ना पर कोई असर नहीं हुआ। माउंटबैटेन बहुत अफसोस के साथ इस नतीजे पर पहुँचे कि 'उनका दिमाग खराब था, उन पर पाकिस्तान का भूत सवार था।'

जिन्ना के चले जाने के बाद अपने अध्ययन-कक्ष में अकेले बैठकर सोचते हुए माउंटबैटेन ने महसूस किया कि शायद जिन्ना जो कुछ चाहते थे, वह उन्हें देना ही पड़े। नयी दिल्ली में उनकी जिम्मेदारी सबसे पहले उस राष्ट्र के प्रति थी जिसने उन्हें यहाँ भेजा था, ब्रिटेन के प्रति। वह बहुत चाहते थे कि भारत की एकता बनी रहे, लेकिन इस कीमत पर नहीं कि उनका अपना देश एक ऐसे हिन्दुस्तान में बुरी तरह फँसकर रह जाये, जहाँ अराजकता और हिंसा का बोलबाला हो।

उन्हें कोई हल ढूँढ़ना था, जल्दी ढूँढ़ना था, और वह उस हल को जबरदस्ती किसी पर थोप नहीं सकते थे। फौज में सेनापति रहने के कारण तेजी से निर्णायक कदम उठाना माउंटबैटेन का स्वभाव बन चुका था, वैसा ही कदम, जैसा कि उन्होंने इस वक्त उठाया। आने वाले वर्षों में उनके आलोचकों ने उन पर यह दोष लगाया कि उन्होंने एक राजनेता की तरह नहीं, बल्कि एक अधीर नौ-सैनिक की तरह काम किया। लेकिन माउंटबैटेन बेकार बहस में और ज्यादा समय नष्ट नहीं करना चाहते थे। वह इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि अगर नरक की अग्नि शान्त होने तक भी बहस करते रहते तो भी हासिल कुछ न होता, और नतीजा यही होता कि भारत नरक बन जाता।

वह खरी यथार्थनिष्ठता के साथ यह मान लेने को तैयार थे कि उनके वशीकरण अभियान का मुस्लिम नेता पर कोई असर नहीं हुआ था। अधिकाधिक यही प्रतीत हो रहा था कि भारत का बँटवारा ही एकमात्र रास्ता है। अब माउंटबैटेन को केवल यह काम करना था कि वह नेहरू और पटेल को यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेने के लिए राजी कर लें और इसके लिए कोई ऐसी योजना तैयार करें, जिसे उनका समर्थन मिल सके।

अगले दिन सुबह उन्होंने अपने कर्मचारी-मण्डल के सामने जिन्ना के साथ बातचीत की समीक्षा की। फिर बड़े उदास मन से उन्होंने अपने चीफ ऑफ स्टाफ लॉर्ड इस्मे की तरफ मुड़कर देखा और कहा—'अब समय आ गया है कि भारत के बँटवारे की योजना बनाने का काम शुरू कर दिया जाये।'

× × ×

वह रहस्यमय काली फिल्म

अगर अप्रैल 1947 में लुई माउंटबैटेन, जवाहरलाल नेहरू या महात्मा गांधी को एक बहुत ही असाधारण ढंग से छुपाकर रखे गये रहस्य का पता होता तो भारत के सिर पर मँडराता हुआ बँटवारे का खतरा टाला जा सकता था। यह रहस्य फिल्म के एक टुकड़े पर एक अटल सत्य की तरह अंकित था, उस फिल्म पर, जो भारत के राजनीतिक सन्तुलन को और फलस्वरूप एशिया के इतिहास की पूरी दिशा को बदल सकती थी। फिर भी इस रहस्य को एक अनमोल खजाने की तरह इतना छुपाकर रखा गया था कि अंग्रेजों की खुफिया पुलिस तक को, जो बड़े-से-बड़े रहस्य का सुराग लगाने में सारी दुनिया में मशहूर थी, इसका पता नहीं था।

फिल्म के बीच में दो काले-काले गोल धब्बे थे, लगभग पिंग-पाँग की गेंद के बराबर। दोनों धब्बों के चारों ओर एक कटी-फटी सफेद गोट-सी लगी हुई थी, जैसे ग्रहण के समय सूरज के चारों ओर दिखायी देती है। इन दो धब्बों के ऊपर बहुत-से छोटे-छोटे सफेद धब्बे पसलियों के पिंजरे के ऊपरी सिरे तक चले गये थे। यह एक्स-रे फिल्म थी, एक आदमी के फेफड़ों का एक्स-रे। वे काले गोल धब्बे इस बात के सूचक थे कि उतनी जगह में फेफड़े बिल्कुल बेकार हो चुके हैं, खोखले हो चुके हैं। सफेद धब्बों की छोटी-सी शृंखला उन क्षेत्रों की सूचक थी, जहाँ फेफड़े बेकार होना शुरू हो गये थे और इनसे रोग के इस निदान की पुष्टि होती थी कि टी.बी. फेफड़ों को धीरे-धीरे खाये जा रही थी। क्षय इतना व्यापक था कि उस फिल्म पर जिस आदमी के फेफड़ों की तस्वीर थी, वह मुश्किल से दो-तीन साल जी सकता था।

एक्सरे की ये फिल्म एक ऐसे लिफाफे में बन्द थी, जिस पर किसी का नाम नहीं लिखा था, और यह लिफाफा बम्बई के मशहूर डॉक्टर आर.पटेल की तिजोरी में सुरक्षित था। उसमें जिस आदमी के फेफड़ों की तस्वीर थी, वह वही जिद्दी और अड़ियल आदमी था, जिसने लुई माउंटबैटेन की भारत की एकता को बनाये रखने की सारी कोशिशों पर पानी फेर दिया था। मुहम्मद अली जिन्ना वाइसराय और भारत की एकता के बीच एक अटल बाधा की तरह खड़े थे और उनके सिर पर मौत का साया मँडरा रहा था।

इस घातक रोग का पता, जो जिन्ना के जीवन को बहुत तेजी से समाप्त कर रहा था, डॉ.पटेल को माउंटबैटेन के आने से नौ महीने पहले जून 1946 में तब चला, जब उन्होंने उन फिल्मों को डेवलप करके पानी की ट्रे से निकाला। पेट-भर भोजन न पाने वाले करोड़ों हिन्दुस्तानियों को हर साल मौत के मुँह में धकेल देने वाले टी.बी. के क्रूर अभिशाप ने पाकिस्तान के पैगम्बर के फेफड़ों पर सत्तर वर्ष की आयु में हमला किया था।

जिन्दगी-भर कमजोर फेफड़ों की वजह से जिन्ना का स्वास्थ्य खराब रहा था। युद्ध से बहुत पहले बर्लिन में वह फ्लूरिसी से पैदा हो जाने वाली पेचीदगियों का इलाज करा चुके थे। उसके बाद उन्हें बार-बार ब्रॉंकाइटिस की खाँसी का दौरा पड़ता था और इसने उनके शरीर को इतना कमजोर कर दिया था कि कोई लम्बा भाषण देने के बाद वह घण्टों हाँफते रहते थे।

शिमला में मई 1946 के अन्त में उन पर फिर ब्रॉंकाइटिस का दौरा पड़ा था। जिन्ना की वफादार बहन फातिया ने उन्हें फौरन बम्बई की गाड़ी पर बिठा दिया था। उन्हें बम्बई से पहले ही एक छोटे-से स्टेशन पर उतारकर सीधे अस्पताल पहुँचा दिया गया। इस अस्पताल में जब धीरे-धीरे उनके शरीर में जान आ रही थी, तभी डॉ.पटेल को उस बात का पता चला था, जो भारत का सबसे गुप्त रहस्य बनकर रह गया था।

अगर जिन्ना टी.बी. के कोई मामूली बदनसीब रोगी होते तो उन्हें अपनी बाकी जिन्दगी किसी सैनेटोरियम में काटनी पड़ती। लेकिन जिन्ना कोई साधारण मरीज नहीं थे। जब उन्हें अस्पताल से छुट्टी दी गयी तो डॉ.पटेल उन्हें अपने दफ्तर में लाये। वहाँ बड़े उदास मन से उन्होंने अपने दोस्त और मरीज को बताया कि वह किस घातक रोग का शिकार है। उन्होंने जिन्ना को बताया कि उनके शरीर की सारी शक्ति अब लगभग बिल्कुल खत्म होती जा रही थी। अगर उन्होंने अपने काम का बोझ कम न किया, ज्यादा आराम न किया, सिगरेट और शराब पीना न छोड़ा और अपने शरीर पर जो दबाव है, उन्हें दूर न किया तो वह एक-दो साल से ज्यादा चलने वाले नहीं हैं।

जिन्ना ने यह कठोर सूचना बड़े निरीह भाव से सुनी। उनके पीले चेहरे पर कोई भी भाव नहीं आया, उन्होंने डॉ.पटेल से कहा कि अपने जीवन के ध्येय को छोड़कर किसी सैनेटोरियम में जाकर पड़े रहने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इतिहास की इस नाजुक घड़ी में हिन्दुस्तान के मुसलमानों का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी से मौत ही उन्हें विमुख कर सकती थी। वह डॉक्टर की सलाह मानकर अपने काम का बोझ सिर्फ उस हद तक कम करने को तैयार हुए, जितना उनके इस महान दायित्व को ध्यान में रखते हुए सम्भव था। जिन्ना जानते थे कि अगर उनके हिन्दू दुश्मनों को पता चल गया कि वह मरने वाले हैं तो उनका पूरा राजनीतिक दृष्टिकोण बदल जायेगा। वे उनके कब्र में पहुँचने तक इन्तजार करेंगे और फिर मुस्लिम लीग के नेतृत्व में नीचे के ज्यादा नरम नेताओं के साथ समझौता करके उनके सपने की धज्जियाँ उड़ा देंगे।

डॉ.पटेल हर दूसरे हफ्ते बहुत गुप्त रूप से जिन्ना को इंजेक्शन लगाते रहे, जिससे उनके शरीर में कुछ जान आयी और वह फिर काम में जुट गये। उन्होंने अपने डॉक्टर की सलाह का पालन करने की कोई कोशिश नहीं की। वह इसके लिए कत्तई तैयार नहीं थे कि मौत के बुलावे की वजह से वे इतिहास के बुलावे को ठुकरा दें। असाधारण साहस और अपार उत्साह के साथ जिन्ना अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए मैदान में जमे रहे। उनकी जिन्दगी के चिराग की लौ आखिरी बार जोर से भड़क उठी। जिन्ना ने भारत के भविष्य के बारे में माउंटबैटेन से अपनी पहली बातचीत में कहा था, 'इस पूरे मामले में बुनियादी बात यह है कि जो कुछ करना हो, जल्दी-से-जल्दी किया जाये।' और जिन्ना ने स्वयं अपनी नियति के साथ जो सौदा किया था, उसमें भी इसी तेज रफ्तार की जरूरत थी।

× × ×

बंटवारा

महात्मा गांधी की प्रायश्चित-यात्रा का अन्तिम कष्टप्रद दौर 1 मई, 1947 की शाम को शुरू हुआ, नयी दिल्ली की भंगियों की बस्ती की उसी छोटी-सी झोपड़ी में, जहाँ पन्द्रह दिन पहले उन्होंने अपने साथियों से भारत की एकता बनाये रखने की अपनी योजना मनवाने की असफल कोशिश की थी। वह जमीन पर पालथी-मारे बैठे थे, उनके गंजे सिर पर आज भी एक गीला अँगोछा पड़ा हुआ था। वह बड़े दुखी मन से अपने चारों ओर बैठे हुए लोगों की बहस सुन रहे थे—यह कांग्रेस पार्टी का हाईकमान था। यों तो इसका संकेत पिछली मीटिंग में ही मिल चुका था, लेकिन अब गांधी और उनके साथियों के अन्तिम रूप से अलग होने का समय आ गया था। गांधी ने जेल में

ब्रिटेन से ली गयी संसदीय जन-तांत्रिक प्रणाली और कार्ल मार्क्स के आर्थिक समाजवाद को एक साथ पनपाने को उत्सुक नेहरू माउंटबैटेन के इस विश्वास से सहमत हो गये थे कि भारत के विभाजन का विकल्प केवल एक गृह-युद्ध में ही सम्भव है। उन्होंने अपने नेता का साथ छोड़ दिया और दिल में रंचमात्र भी खुशी के अभाव में अपने देशवासियों से भारत-विभाजन को स्वीकार कर लेने के लिए कहा। भारत को आजादी का गहरा मूल्य चुकाना पड़ा। इस विभाजन ने एक करोड़ अभागे, असमर्थ लोगों को सड़कों पर, रेल के डिब्बों में और खड़ी फसलों से भरे पंजाब के खेतों में उठा फेंका। मनुष्य के इतिहास में देशान्तरण का यह सबसे बड़ा उदाहरण था।

अपने जीवन के कई बरस गुजारे थे, अपने शरीर को कष्ट देकर अनशन किये थे, हड़तालों और बायकाट आन्दोलनों का संगठन किया था—उन सभी कोशिशों ने मिलकर आज की इस मीटिंग के लिए रास्ता बनाया था। उन्होंने भारत की काया पलट दी थी और अहिंसा के सहारे अपने देशवासियों को स्वतंत्रता दिलाने के लिए इस शताब्दी की एक मौलिक, दार्शनिक विचारधारा की नींव डाली थी। अब यह खतरा पैदा हो गया था कि उनकी यह गौरवान्वित विजय एक भयानक दुखान्त नाटक बनकर रह जायेगी। उनके अनुयायी अब तंग आ चुके थे, उनका धीरज टूट चुका था और वे आजादी की मंजिल तक पहुँचने के लिए आखिरी और लाजिमी कदम के तौर पर हिन्दुस्तार के बँटवारे को मान लेने के लिए तैयार हो गये थे।

गांधी भारत की एकता के प्रति किसी रहस्यमयी श्रद्धा के कारण बँटवारे के विरोधी नहीं थे। भारत के गाँवों में उन्होंने बरसों जो समय बिताया था, उससे उन्हें देश की आत्मा का एक सहज बोध हो गया था। उनका यह बोध उन्हें बताता था कि देश का बँटवारा 'डॉक्टर का ऑपरेशन' नहीं साबित होगा। जैसा कि जिन्ना ने माउंटबैटेन को यकीन दिलाया था। वह एक भयानक कत्लेआम बन जायेगा, उन हजारों गाँवों में, जिन्हें वह इतनी अच्छी तरह जानते थे, दोस्त दोस्त के खून का, पड़ोसी पड़ोसी के खून का, अजनबी अजनबी के खून का प्यासा हो जायेगा। एक घृणित उद्देश्य के लिए उनका खून बहाया जायेगा, इस उपमहाद्वीप को दो ऐसे परस्पर विरोधी हिस्सों में बाँट देने के लिए, जो हमेशा एक-दूसरे की बोटियाँ नोचते रहेंगे। गांधी का विश्वास था कि आने वाले दसियों वर्षों तक हिन्दुस्तानियों की कई पीढ़ियों को इस गलती की कीमत चुकाते रहना पड़ेगा, जो ये लोग करने जा रहे थे।

गांधी की मुश्किल यह थी कि उस रात उनके पास अपने सहज बोध के अलावा कोई दूसरा ठोस सुझाव नहीं था, उस सहज बोध के अलावा, जिसे यही लोग पहले कितनी ही बार स्वीकार कर चुके थे। लेकिन अब वह पैगम्बर नहीं रह गये थे। उन्होंने बाद में बड़ी कटुता से अपने एक मित्र से कहा, 'ये लोग मुझे महात्मा कहते हैं, लेकिन मैं आपसे बताता हूँ कि ये लोग मेरे साथ भंगी जैसा सलूक भी नहीं करते।'

माउंटबैटेन की तरह ही नेहरू, पटेल और दूसरे सभी लोग यह महसूस करते थे कि भारत के सिर पर बहुत बड़ी तबाही के बादल मँडरा रहे हैं और बँटवारा कितना ही कष्टप्रद क्यों न हो, देश को बचाने का वही एक रास्ता है। गांधी का मन, गांधी की आत्मा पुकार-पुकार कर कह रही थी कि ये लोग गलती कर रहे हैं। और इन लोगों की राय ठीक हो, तो भी वह बँटवारे के बजाय देश में अराजकता को ही ज्यादा पसन्द करते।

उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि 'अंग्रेजों के दिये बिना जिन्ना को पाकिस्तान कभी मिल नहीं सकता और कांग्रेस के बहुमत का अटल विरोध हो तो अंग्रेज कभी बँटवारा करेंगे नहीं। माउंटबैटेन कोई भी सुझाव रखें लेकिन उनके फैसले को रोक देने की कुंजी तो आपके हाथ में है।' गांधी ने गिड़गिड़ाकर कहा, 'अंग्रेजों से कह दीजिये कि यहाँ से चले जायें। उनके जाने के बाद जो कुछ होगा, हम भुगत लेंगे। उनसे कह दीजिये कि वे भारत को छोड़कर चले जायें—भगवान के भरोसे छोड़ जायें, उनका जी चाहे तो उथल-पुथल और अराजकता के हवाले कर जायें, लेकिन वे यहाँ से चले जायें।' 'हमें आग में से होकर गुजरना पड़ेगा', उनका विश्वास था, 'लेकिन इस आग में तपकर हम निखर जायेंगे।'

लेकिन उनकी आवाज निर्जन की पुकार की तरह थी। उनके वे ही चुने हुए निकटतम सहायक भी अब इस आखिरी बार उनकी अन्तरात्मा की उस आवाज को सुनने को तैयार नहीं थे, जो इससे पहले कितनी ही बार स्वयं उनकी आकांक्षाओं को व्यक्त कर चुकी थी।

पटेल तो माउंटबैटेन के भारत आने के पहले ही से बँटवारे को मान लेने को तैयार थे। वह बूढ़े हो चले थे, उन्हें दो बार दिल का दौरा पड़ चुका था और वह चाहते थे कि बँटवारा हो जाये ताकि यह रोज-रोज की बहस खत्म हो और स्वतंत्र भारत का निर्माण करने का काम शुरू किया जा सके। उनकी दलील थी कि जिन्ना जो राज्य माँगते हैं वह उन्हें दे दो, वह बहरहाल बहुत दिन टिक नहीं पायेगा। पाँच साल में मुस्लिम लीग भीख माँगती हुई उनके दरवाजे पर आयेगी कि पाकिस्तान को भारत में फिर मिलाकर एक कर दो।

नेहरू के मन में बड़ी व्यथा थी, वह एक अजीब दुविधा में फँस गये थे। एक ओर था गांधी के प्रति उनका अगाध प्रेम और दूसरी ओर माउंटबैटेन दम्पत्ति के प्रति प्रशंसा तथा मित्रता की नयी भावना। गांधी की बात उनके मन को छूती थी, माउंटबैटेन की बात उनके दिमाग को। नेहरू का सहज मन बँटवारे के विचार से ही सिहर उठता था, लेकिन उनकी तर्कबुद्धि उनसे कहती थी कि इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता भी तो नहीं है। इस नतीजे पर पहुँचने के बाद से कि और कोई चारा ही नहीं है, माउंटबैटेन अपने वशीकरण अभियान का सारा सम्मोहन और सारी तर्क-शक्ति नेहरू को अपने मत के पक्ष में कर लेने के लिए इस्तेमाल करते रहे थे। एक दलील बहुत बुनियादी थी। जिन्ना के चले जाने के बाद हिन्दू-भारत में उस तरह की मजबूत केन्द्रीय सरकार बनायी जा सकती थी, जिसकी नेहरू को अपने सपनों के समाजवादी भारत का निर्माण करने के लिए जरूरत थी। अन्त में वह भी उस आदमी के मुकाबले पर डट गये, जिसके पीछे वह इतने समय से चलते आये थे।

जब ये दो सशक्त स्वर भी बँटवारे के पक्ष में हो गये तो बाकी हाईकमान के राजी होने में कितनी दे लगती! नेहरू को यह अधिकार दे दिया गया कि वह वाइसराय को यह सूचना दे दें कि कांग्रेस अब भी 'संयुक्त भारत के विचार से पूरी आस्था के साथ सम्बद्ध है', लेकिन बँटवारे का सुझाव इस शर्त पर मानने को तैयार है कि पंजाब और बंगाल के दो बड़े सूबों का भी बँटवारा कर दिया जाये। जो आदमी उनकी अगुवाई करके उन्हें विजय की इस मंजिल तक लाया था, वह अब अकेला रह गया था—उसकी विजय कलंकित हो चुकी थी और उसका सपना चूर-चूर हो चुका था...। ❑

गांधीजी की शहादत

हत्यारों की पहचान स्वयं सरदार पटेल ने की थी

❑ शमसुल इस्लाम

हिन्दुत्ववादी राजनीति का सब से प्रमुख झंडाबरदार संगठन, आरएसएस, जिस के सदस्य आज देश पर राज कर रहे हैं, जब भी गांधीजी के क़ातिलों की हिन्दुत्ववादी पहचान और उनके आरएसएस तथा सावरकर के नेतृत्व वाली हिन्दू महासभा से रिश्तों की चर्चा की जाती है, तो आपे से बाहर हो जाता है। इस के बजाय कि वह शर्मसार हो और हत्या की जिम्मेदारी के लिए प्रायश्चित करे; उल्टा चोर कोतवाल को डांटने लगता है। जो लोग इस सच को रेखांकित करते हैं, उन्हें अदालतों में घसीटा जाता है, ताकि वे इसकी चर्चा करना छोड़ दें।

गांधीजी के हत्यारों का आरएसएस जैसे संगठनों से सम्बन्ध कोई ऐसा राज़ नहीं है, जो छुपा रहा हो। इस को जानने के लिए हमें देश के पहले गृह-मंत्री और उप-प्रधान मंत्री वल्लभ भाई पटेल के सरकारी काग़ज़ात का अध्ययन करना होगा और उन्होंने गांधीजी की हत्या के बाद आरएसएस के खिलाफ़ जो क़दम उठाया था, उस को याद रखना होगा।

याद रहे कि आरएसएस सरदार पटेल पर दुश्मन होने का इलज़ाम नहीं लगा सकता है, क्योंकि वे और उसके सब से शक्तिशाली 'स्वयंसेवक' प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी कांग्रेस के इस बड़े नेता को पूजते हैं। इनकी शान में मोदी ने दुनिया की सबसे ऊंची मूर्ति गुजरात में लगवाई है। यह और बात है कि 'आत्मनिर्भर भारत' और 'मेक इन इंडिया' का ढिंढोरा पीटने वाले हमारे प्रधानमंत्री ने इस सरदार की मूर्ति को चीन के एक कारखाने में ढलवाया है।

आरएसएस पर प्रतिबन्ध!

गांधीजी की हत्या के बाद, 4 फ़रवरी 1948 को आरएसएस पर सरदार के मंत्रालय ने प्रतिबंध लगा दिया गया था। यह प्रतिबंध लगाए जाने के पीछे जो कारण थे, उनमें कई राष्ट्रविरोधी कार्य भी शामिल थे। सरकार द्वारा आरएसएस पर प्रतिबंध लगा देने वाला आदेश भी अपने आप में बहुत स्पष्ट था–

'भारत सरकार ने 2 फ़रवरी को अपनी घोषणा में कहा है कि उसने उन सभी विद्वेषकारी तथा हिंसक शक्तियों को जड़ मूल से नष्ट कर देने का निश्चय किया है, जो राष्ट्र की स्वतंत्रता को ख़तरे में डालकर उसके उज्ज्वल नाम पर कलंक लगा रहीं हैं। उसी नीति के अनुसार चीफ़ कमिश्नरों के अधीनस्थ सब प्रदेशों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अवैध घोषित करने का निश्चय भारत सरकार ने कर लिया है। गवर्नरों के अधीन राज्यों में भी इसी ढंग की योजना जारी की जा रही है।

× × ×

संघ के स्वयंसेवक अनुचित कार्य भी करते रहे हैं। देश के विभिन्न भागों में उसके सदस्य व्यक्तिगत रूप से आगज़नी, लूटमार, डाके, हत्याएं तथा लुकछिप कर शस्त्र, गोला और बारूद संग्रह करने जैसी हिंसक कार्यवाहियां कर रहे हैं। यह भी देखा गया है कि ये लोग पर्चे भी बांटते हैं, जिनमें जनता को आतंकवादी मार्गों का अवलंबन करने, बंदूकें एकत्र करने तथा सरकार के बारे में असंतोष फैलाकर सेना और पुलिस में उपद्रव कराने की प्रेरणा दी जाती है।'

सरदार पटेल का जवाहरलाल नेहरू के नाम फ़रवरी 27, 1948 का पत्र

गांधी जी की हत्या के 28 दिन बाद लिखे गए इस पत्र में जबकि हिन्दुत्ववादी हत्यारों के सांगठनिक और वैचारिक रिश्तों के बारे में अभी पूरी जानकारियां नहीं मिली थीं, सरदार ने प्रधानमंत्री नेहरू को जाँच की प्रगति से अवगत करते हुए लिखा–

'तमाम अभियुक्तों ने अपनी हरकतों के लम्बे और विस्तृत बयान दिए हैं। इनसे पता लगता है कि साजिश डील में नहीं रची गयी। यह भी साफ़ ज़ाहिर होता है कि आरएसएस इस में क़तई शामिल नहीं था। इस षड्यंत्र का रचेता और तामील करने वाला हिन्दू महासभा का एक कट्टरवादी गुट था, जिस की रहनुमाई सीधे सावरकर ने की थी।'

आरएसएस और उसके पिछलग्गू सरदार के इस पत्र को एक सर्टिफिकेट के तौर पर यह साबित करने के लिए इस्तेमाल करते हैं कि आरएसएस इस हत्या में शामिल नहीं था। लेकिन वे सरदार के पत्र के बाद वाले हिस्से को पी जाते हैं जिस में सरदार ने साफ़ लिखा है–

'आरएसएस जैसे ख़ुफिया संगठन, जिनके कोई रिकॉर्ड, पंजिकाएँ इत्यादि नहीं होते हैं, के बारे में पुख्ता तौर पर यह पता करना कि कोई व्यक्ति विशेष इस का सक्रिय सदस्य है या नहीं, एक बहुत मुश्किल काम होता है।'

सरदार पटेल ने हिन्दुत्ववादी खेमे के एक बड़े नेता, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, जो उस समय हिन्दू महासभा के अध्यक्ष भी थे, को साफ़ लिखा कि आरएसएस और हिन्दू महासभा दोनों इस जघन्य अपराध के लिए जिम्मेदार थे, उन्होंने आरएसएस को नंबर एक का जिम्मेदार ठहराया। सरदार पटेल ने 18 जुलाई सन् 1948 को एक पत्र लिखा–

'जहां तक आरएसएस और हिंदू महासभा की बात है, गांधी जी की हत्या का मामला अदालत में है और मुझे इसमें इन दोनों संगठनों की भागीदारी के बारे में कुछ नहीं कहना चाहिए। लेकिन हमें मिली रिपोर्टें इस बात की पुष्टि करती हैं कि इन दोनों संस्थाओं, ख़ासकर आरएसएस की गतिविधियों के फलस्वरूप देश में ऐसा माहौल बना कि ऐसा बर्बर काण्ड संभव हो सका। मेरे दिमाग़ में कोई संदेह नहीं है कि हिंदू महासभा का अतिवादी भाग षड्यंत्र में

शामिल था। आरएसएस की गतिविधियां सरकार और राज्य-व्यवस्था के अस्तित्व के लिए ख़तरा थीं। हमें मिली रिपोर्टें बताती हैं कि प्रतिबंध के बावजूद वे गतिविधियां समाप्त नहीं हुई हैं। दरअसल, समय बीतने के साथ आरएसएस की टोली अधिक उग्र हो रही है और विनाशकारी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रही है।'

गांधीजी की हत्या के 214 दिन बाद जब सरदार के सामने हिन्दुत्ववादी हत्यारों के बारे में तस्वीर बहुत साफ़ हो चुकी थी, तो उन्होंने आरएसएस के उस समय के आक़ा, गोलवलकर को उनके हिन्दुत्ववादी संगठन की गांधीजी के हत्या में हिस्सेदारी पर बिना किसी संकोच के सितंबर 19, 1948 के पत्र में लिखा–

'हिन्दुओं का संगठन करना, उनकी सहायता करना एक प्रश्न है, पर उनकी मुसीबतों का बदला, निहत्थे व लाचार औरतों, बच्चों व आदमियों से लेना दूसरा प्रश्न है।

इसके अतिरिक्त यह भी था कि उन्होंने कांग्रेस का विरोध करके जनता में एक प्रकार की बेचैनी पैदा कर दी थी, इनकी सारी तक़रीरें सांप्रदायिक विष से भरी थीं। हिन्दुओं में जोश पैदा करने व उनकी रक्षा के प्रबन्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह ज़हर फैले। उस ज़हर का फल अन्त में यही हुआ कि गांधी जी की अमूल्य जान की कुर्बानी देश को सहनी पड़ी और सरकार व जनता की सहानुभूति ज़रा भी आरएसएस के साथ न रही, बल्कि उनके ख़िलाफ़ हो गयी। उनकी मृत्यु पर आरएसएस वालों ने जो हर्ष प्रकट किया था और मिठाई बांटी थी, उससे यह विरोध और भी बढ़ गया और सरकार के लिए इस हालत में आरएसएस के खिलाफ़ कार्यवाही करना ज़रूरी हो गया था।

तब से अब तक 6 महीने से ज्यादा हो गए। हम लोगों को आशा थी कि इतने वक्त के बाद सोच विचार कर के आरएसएस वाले सीधे रास्ते पर आ जाएंगे। परन्तु मेरे पास जो रिपोर्ट आती हैं, उससे यही विदित होता है कि पुरानी कार्यवाहियों को नई जान देने का प्रयत्न किया जा रहा है।'

यह सच है कि गांधी की हत्या के प्रमुख साजिशकर्ता सावरकर बरी कर दिए गए। हालांकि यह बात आज तक समझ से बाहर है कि निचली अदालत, जिसने सावरकर को दोषमुक्त किया था, उसके फ़ैसले के खिलाफ सरकार ने हाईकोर्ट में अपील क्यों नहीं की।

सावरकर के गांधी हत्या में शामिल होने के बारे में न्यायधीश कपूर आयोग ने 1969 में साफ़ लिखा कि वे इस में शामिल थे, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। सावरकर का फ़रवरी 26,1966 को देहांत हो चुका था।

यह अलग बात है कि इस सब के बावजूद सावरकर की तस्वीरें महाराष्ट्र विधान सभा और भारतीय संसद की दीवारों पर सजाई गयीं और देश के हुक्मरान पंक्तिबद्ध हो कर इन तस्वीरों पर पुष्पांजलि करते हैं। इन्हीं गलियारों में सावरकर के चित्रों के साथ लटकी गांधी की तस्वीरों पर क्या गुज़रती होगी, यह किसी ने जानने की कोशिश नहीं की है।

इस ख़ौफ़नाक यथार्थ को झुठलाना मुश्किल है कि देश में हिंदुत्व की राजनीति के उभार के साथ गांधीजी की हत्या पर ख़ुशी मनाने, हत्यारों का महामंडन करने, उन्हें भगवान का दर्जा देने का भी एक नियोजित अभियान चलाया जा रहा है। गांधीजी की शहादत दिवस पर गोडसे की याद में सभाएं की जाती हैं। उसके मंदिर, जहाँ उसकी मूर्तियां स्थापित हैं, में पूजा की जाती है, गांधीजी की हत्या को 'वध' बताया जाता है।

यह सब कुछ लम्पट हिन्दुत्ववादी संगठनों या लोगों द्वारा ही नहीं किया जा रहा है। मोदी के प्रधानमंत्री बनने के कुछ ही महीनों में आरएसएस/भाजपा के एक वरिष्ठ विचारक साक्षी, जो संसद सदस्य भी हैं, ने गोडसे को 'देश-भक्त' घोषित करने की मांग की। हालांकि उनको यह मांग विश्वव्यापी भर्त्सना के बाद वापस लेनी पड़ी, लेकिन इस तरह का वीभत्स प्रस्ताव हिन्दुत्ववादी शासकों के गोडसे के प्रति प्यार को ही दर्शाता है।

इस सिलसिले में गांधीजी के हत्यारे नाथूराम गोडसे के महिमामण्डन की सब से शर्मनाक घटना जून 2013 में गोवा में घटी। यहाँ पर भाजपा कार्यकारिणी की बैठक थी, जिसमें गुजरात के मुखयमंत्री मोदी को 2014 के संसदीय चनाव के लिए प्रधानमंत्री पद का प्रत्याशी चुना गया। इसी दौरान वहां हिन्दुत्ववादी संगठन 'हिन्दू जनजागृति समिति', जिस पर आतंकवादी कामों में लिप्त होने के गंभीर आरोप हैं, का देश को हिन्दू राष्ट्र बनाने के लिए अखिल भारत सम्मलेन भी हो रहा था। इस सम्मलेन का श्रीगणेश मोदी के शुभकामना सन्देश से हुआ। जून 7, 2013 को भेजे अपने सन्देश में मोदी ने इस संगठन को 'हिन्दू धर्म के ध्वज, राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं राष्ट्र के प्रति समर्पण' के लिए बधाई दी।

इसी मंच से जून 10 को हिंदुत्व संगठनों, विशेषकर आरएसएस के क़रीबी लेखक के.वी. सीतारमैया का भाषण हुआ। उन्होंने आरम्भ में ही घोषणा की कि 'गांधी भयानक दुष्कर्मी और सर्वाधिक पापी था'। उन्होंने अपने भाषण का अंत इन शर्मनाक शब्दों से किया–'जैसा कि भगवन श्री कृष्ण ने कहा है–'दुष्टों के विनाश के लिए, अच्छों की रक्षा के लिए और धर्म की स्थापना के लिए, मैं हर युग में पैदा होता हूँ।' 30 जनवरी की शाम, श्री राम, नाथूराम गोडसे के रूप में आए और गांधी का जीवन समाप्त कर दिया'।

गांधीजी, जिन्होंने एक आज़ाद प्रजातान्त्रिक-धर्मनिरपेक्ष देश की कल्पना की थी और उस प्रतिबद्धता के लिए उन्हें जान भी गंवानी पड़ी थी, हिन्दुत्ववादी संगठनों के राजनीतिक उभार के साथ एक राक्षसी चरित्र के तौर पर पेश किए जा रहे हैं। नाथूराम गोडसे और उसके साथी अन्य मुजरिमों ने गांधीजी की हत्या जनवरी 30, 1948 को की थी लेकिन 73 साल के बाद आज भी उनके 'वध' का जश्न जारी है।

जिन लोगों ने गांधीजी की हत्या की थी, उनकी वैचारिक संतानें आज देश पर राज कर रही हैं, देश के लिए इससे बड़ी क्या त्रासदी हो सकती है!

-हस्तक्षेप

गांधीजी जीते जी मरे, इसलिए मरकर भी अमर हुए!

❑ अव्यक्त

आदिग्रंथ में गुरु नानक देव की वाणी है—**'नानक जीवतिआ मरि रहिए, ऐसा जोगु कमाइये।'** जो संत होता है, महात्मा होता है, योगी होता है, वह जीते जी मरता है। संत कबीर की वाणी है—**'जीवन में मरना भला, जो मरि जानै कोय। मरना पहिले जो मरै, अजर अमर सो होय॥'** जीते जी मरने का अर्थ है- अपने मन को, अपनी इन्द्रियों को मारना। अपने अहंकार को मारना। गांधीजी कहते थे कि सत्य के साधक को रजकण से भी विनम्र होना पड़ता है। ऐसी विनम्रता स्वयं को अर्थात् अपने अहंकार को जीते जी मारकर ही हासिल होती है। गांधीजी की मृत्यु के ठीक पूर्व के प्रार्थना-प्रवचनों को पढ़ना चाहिए। उनमें बीसवीं सदी के पहले और दूसरे दशक के 'राजनीतिक' मोहनदास के दर्शन नहीं होते। उनमें उन महात्मा के दर्शन होते हैं, जो सत्य और अहिंसा की सूक्ष्मतम् साधना में गहरे उतरते जा रहे हैं। उनकी वाणी में जो मृदुता है, करुणा है, निर्वैरता है और जो सत्यबोध है, वह दिनानुदिन और भी प्रकट होकर निखरता जाता है। ऐसा लगता है कि वे दिनानुदिन उस सत्यरूपी ईश्वर के निकट से निकटतर होते जा रहे हैं।

सत्य के साधक की परीक्षा सतत होती ही रहती है। लेकिन यदि वह सच्चा साधक है तो विचलित नहीं होता। वह सतत अपने विचारों और कार्यो का निर्भीकतापूर्वक आत्मावलोकन करता रहता है। जहाँ भी वह अपनी कमी पाता है, उसे स्वीकार करके फिर से नए हौसले के साथ आगे बढ़ता है। ऐसी स्वीकारोक्ति के लिए सच्ची निर्भीकता की आवश्यकता होती है। अपने जीवन के अंतिम दिनों में गांधीजी अपने समस्त राजनीतिक जीवन की निर्भीक आत्मालोचना करते हैं। दुनिया उनकी जिन राजनीतिक उपलब्धियों को गिनाते नहीं थकती, उन सबको वे नकार देते हैं। वे कहते हैं कि अब तक के उनके समस्त आंदोलन अहिंसा की सच्ची कसौटी पर खरे नहीं उतरते। नमक सत्याग्रह तक के लिए वे मानते हैं कि उसमें सूक्ष्म हिंसा का समावेश था।

31 मई, 1939 को काठियावाड़ राजनीतिक परिषद, राजकोट में अपने भाषण में

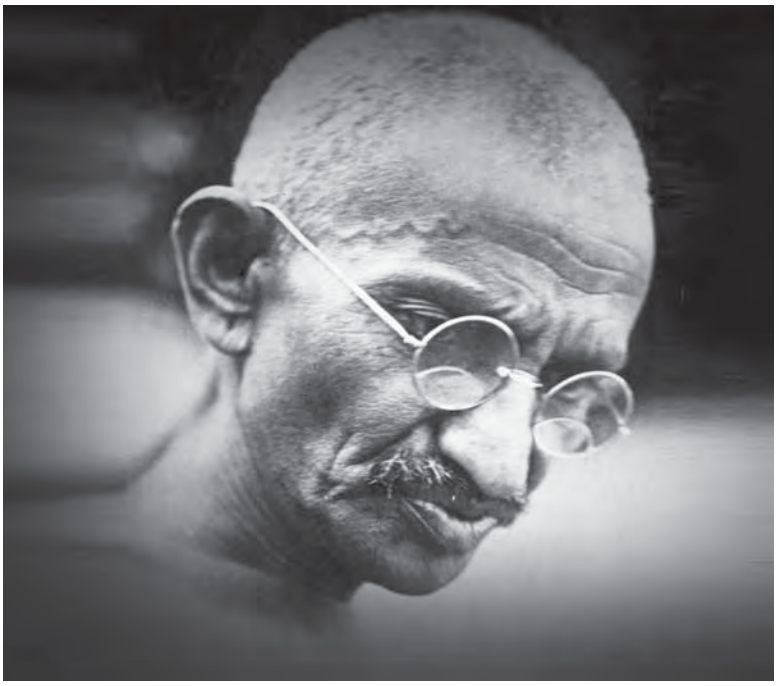

उन्होंने कहा था—'जो अनुभव मुझे हुआ है, उसे देखते हुए आज मैं एक और दांडी कूच नहीं करना चाहूंगा। नमक-कानूनों को तोड़ने का प्रस्ताव बिल्कुल ठीक था, लेकिन मानसिक हिंसा उसमें लगभग शुरू से ही आ गई थी। तब तक हम केवल यही सीख पाए थे कि शारीरिक हिंसा का प्रयोग नहीं करना हमारे हितों के अनुकूल है। यह एक हिसाबी बनिये की अहिंसा थी, वीर क्षत्रिय की अहिंसा नहीं थी। हिसाबी बनिये की अहिंसा हमें बहुत आगे नहीं ले गई है, ले जा भी नहीं सकती थी। यह स्वराज्य प्राप्त करने और बनाये रखने में हथियारों का इस्तेमाल करने वाले विरोधी को अपने पक्ष में करने में सहायक नहीं हो सकती थी। आज मैं हर कहीं हिंसा महसूस करता हूँ। कांग्रेस के अंदर और बाहर मुझे उसकी गंध आती है। ...दुराचारी आदमी कर्म की अपेक्षा अपने मन में अधिक दुराचारी होता है। वचन और कर्म की हमारी हिंसा हमारे मन में उफनती हिंसा की एक हल्की प्रतिध्वनि मात्र होती है।'

इस तरह अपने सहयोगी संगठनों और कार्यकर्ताओं तक के लिए गांधीजी मानते हैं कि वे उन्हें सच्ची अहिंसा नहीं सिखा सके। इसके लिए वे स्वयं को भी जिम्मेदार मानते हैं। वे कहना चाहते हैं कि यदि स्वयं उनमें सच्ची अहिंसा प्रकट हो गई होती या सत्यरूपी ईश्वर से वे पूर्णरूप से एकाकार हो गए होते, तो ही उसका असर उनके सहयोगियों में भी दिखता। ऐसी आत्मालोचना एक निर्भीक और सच्चा सत्याग्रही ही कर सकता है। इस प्रकार वे एक असहाय भक्त की भाँति ईश्वर के शरणागत होते हैं। ऐसा भक्त, जिसे अपनी साधना की सीमाओं का नित्य-प्रति एहसास हो रहा है। लेकिन वह उस सत्यमार्ग को किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहता है, चाहे उसकी जान ही क्यों न चली जाए। सच्चे भक्त की कसौटी यही होती है। और एक सच्चा भक्त ही सच्चा संत हो सकता है।

गांधीजी अपने अंतिम दिनों में संतत्व की दिशा में बढ़ रहे हैं। हर क्षण अपने इष्ट का स्मरण कर रहे हैं। उनके सपनों के वास्तविक 'स्वराज' से कोसों दूर यह देश एक तरफ राजनीतिक आजादी का जश्न मना रहा है और दूसरी तरफ चारों ओर हिंसा का विकराल तांडव

मचा है। समाज में एक-दूसरे के प्रति इतनी घृणा, इतना मनोमालिन्य है कि कोई किसी की सुनने को तैयार नहीं है। स्वयं गांधीजी के निकटतम सहयोगी तक गांधीजी की सुनने को तैयार नहीं हैं। गांधीजी अपनी करुण पुकार को 'नक्कारखाने में तूती' की संज्ञा दे रहे हैं। वे लोगों को कह रहे हैं कि अब तो आजाद भारत की सरकार है देश में। अपनी व्यथा उनसे जाकर कहो, मुझसे कहकर क्या होगा! थोड़ा पश्चाताप, थोड़ी निराशा उन्हें जब-तब परेशान करती है। सवा सौ साल जीने की अब उनकी इच्छा नहीं रही। लेकिन ईश्वर स्मरण से उन्हें साधना की नई ताकत, नई ऊर्जा मिलती है। वे उसी सत्यानारायण को हाजिर-नाजिर मानकर और ज्यादा लंबे डग भरते चले जा रहे हैं।

चाहे नोआखाली हो, चाहे दिल्ली हो, वे रुकते नहीं हैं। उनकी पसलियाँ कमजोर हो रही हैं, लेकिन कृशकाय होना भी एक सच्चे साधक की निशानी है। वे एक कर्मयोगी की चाल में चलते ही जा रहे हैं। सामने लक्ष्य केवल सत्यनारायण है। दीन-हीन, दुखियों और पीड़ितों में वे उसी परमेश्वर का दर्शन कर रहे हैं। राजनीति से वे दूर हो गए हैं। अब उनकी चिंताओं के केन्द्र में समाज आ गया है। वे समझ लेते हैं कि जब तक समाज और लोकमानस अपने कल्याणार्थ सत्यमार्ग से स्वप्रयास नहीं करेगा, तब तक वास्तविक स्वराज की प्राप्ति असंभव है। व्यवस्था, कानून, संविधान और शासनतंत्र को वे एक हिंसक और कामचलाऊ उपकरण ही मानते हैं। दलीय राजनीति के दलदल को वे बखूबी पहचान चुके हैं। अपने अंतिम दिनों में कृपलानी, आर्यनायकम् आदि के साथ एक साक्षात्कार में वे कहते हैं कि इस दलीय और बहुमतवादी व्यवस्था में क्या होगा? **यही होगा कि भविष्य में एक दिन कोई घोर प्रतिक्रियावादी दल सत्ता पर काबिज हो जाएगा और तुम्हारे अस्तित्व का नामोनिशान नहीं बचेगा। इसलिए समाज के प्रबोधन पर काम करना शुरू करो।** स्वयं गांधीजी की मृत्यु ने समाज की इस बोधहीनता, अज्ञानता और भटकाव को ही साबित किया।

लेकिन हमने क्या किया? उसी प्रतिक्रियावाद के जहर को हवा दिया। क्या हम कृष्ण को बाण से बेधने वाले व्याध का नाम जानते हैं? क्या हम सुकरात को मृत्युदंड देनेवाले का नाम जानते हैं? क्या हम ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाने वाले न्यायाधिकारी का नाम जानते हैं? क्या हम अब्राहम लिंकन के हत्यारे का नाम जानते हैं? क्या हम मार्टिन लूथर किंग जूनियर के हत्यारे का नाम जानते हैं? शायद नहीं जानते हैं। बहुत कम ही लोग इनके हत्यारों का नाम जानते हैं। लेकिन गांधीजी के हत्यारे का नाम? उसका नाम हर कोई जानता है। हमने स्वयं उसे इतना प्रचारित किया कि वह प्रकारांतर से एक समानांतर नायक के रूप में प्रतिष्ठापित हो गया।

गांधीजी की मृत्यु पर लिखते हुए विनोबा ने कहीं भी उस युवक के नाम का जिक्र करना उचित नहीं समझा। न ही उन्होंने कहीं द्वेष या रोष प्रकट किया। न ही उसे फाँसी देने की मांग की। विनोबा के शब्द थे—'ब्याध द्वारा भगवान को भूल वश बेधे जाने की घटना पांच हजार वर्षों के बाद फिर घटी है। यों देखने में तो ऐसा दिखाई देगा कि उस व्याध ने अज्ञानवश तीर मारा था और यहाँ इस नौजवान ने सोच-समझ कर, गांधीजी को ठीक पहचानकर, पिस्तौल चलाई। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं था। जैसे वह ब्याध अज्ञानी, वैसा ही यह युवक भी अज्ञानी था। उसकी यह भावना थी कि गांधीजी हिंदू धर्म को हानि पहुँचा रहे हैं और इसलिए उसने उन पर गोलियां छोड़ीं।

लेकिन दुनिया में आज हिंदू धर्म का नाम यदि किसी ने उज्ज्वल रखा है तो वह गांधीजी ने ही रखा है। ...बड़े लोग अपनी रक्षा के लिए बॉडी गार्ड यानी देह-रक्षक रखते हैं। गांधीजी ने ऐसे देह-रक्षक कभी नहीं रखे। देह को वे तुच्छ समझते थे। मृत्यु के पहले ही वे मरकर जी रहे थे। निर्भयता उनका व्रत था। जहाँ किसी फौज को भी जाने की हिम्मत न हो, वहाँ अकेले जाने की उनकी तैयारी थी।'

वह कोई पेशेवर हत्यारा या डाकू नहीं था। वह एक घोर प्रतिक्रियावादी विचारधारा के नशे के प्रभाव में था। स्वयं गांधीजी ने जनरल डायर की हत्या करने वाले भारतीय युवक को ऐसी ही प्रतिक्रियावादी विचारधारा से ग्रसित पागल की संज्ञा दी थी। गांधीजी यदि उस हमले में बच जाते तो क्या करते? यह एक विचारणीय प्रश्न है। राजनेता और प्रशासन को हमेशा ही एक छोटा, आसान और कामचलाऊ रास्ता अच्छा लगता है। उस युवक को फाँसी देना ऐसा ही एक शॉर्टकट था। जबकि पश्चाताप, आत्मग्लानि और प्रायश्चित ही उस ब्याध के लिए सबसे बड़ी सजा हो सकती थी। बंधनों के साथ भी उसे आत्मसुधार का अवसर देना और गांधीजी के मार्ग पर देश और समाज को ले जाना उसका सही समाधान हो सकता था।

प्रतिक्रियावाद को भी एक प्रतीक चाहिए होता है, भले वह नकारात्मक या खलनायकीय चरित्र ही क्यों न हो। एक तो वह अज्ञानी ब्याध, जिसने गांधीजी की छाती को बेधा। दूसरे हम अज्ञानी, जिन्होंने अज्ञानता में उसकी समानांतर खलनायकीय प्रतिष्ठा की। आज उसी का दुष्परिणाम है कि उसके नाम से संगठन, मंदिर और कोचिंग संस्थान तक स्थापित हो रहे हैं। उसकी लिखी पुस्तकें गली-मोहल्ले, चौक-चौराहे पर हाथों-हाथ बिक रही हैं। कहाँ हमें एक बड़ी लकीर खींचनी थी और कहाँ हम किसी और लकीर को छोटी करने के चक्कर में पड़ गए। दुष्परिणाम सामने है।

गांधीजी तो गीता को अपनी माता मानते थे। गीता माता के दूध से उनमें कर्मयोग का सिंचन और पोषण हुआ था। गीता शरीर को नहीं, आत्मा को सत्य मानती है। इसलिए स्वयं गांधीजी मृत्यु और मृत्यु के कारण को देह से मुक्त होने का निमित्त भर मानते थे। संत जब मरता है तब अपने घर को जाता है। सूफियों ने उसे पीहर की संज्ञा दी है। ऋषियों ने उसे बैकुण्ठ की संज्ञा दी है, जो वास्तव में तमाम देहजन्य कुंठाओं से मुक्त हो जाने की अवस्था है। पौराणिकों ने उसे 'स्वर्ग' की संज्ञा दी है, जिसका वास्तविक अर्थ होता है-'स्वःगम' यानी स्व में, निजस्वरूप में गमन। संतों ने उसे सत्यलोक की संज्ञा दी है, जहाँ आत्मा सत्यरूपी परमात्मा के साथ एकाकार हो जाती है। गांधीजी ऐसे ही सत्याकार हुए। झूठा रोना-धोना और वृथा प्रलाप छोड़कर अब हमें यह सोचना है कि उनके नामलेवा हमलोग क्या हुए और क्या नहीं हुए। ❑

हिन्दू राष्ट्रवादी गांधी का निर्माण!

❑ पराग मांदले

नया साल एक बड़ी रोचक ख़बर लेकर आया। इसके पहले ही दिन गांधी पर लिखी गई एक नयी किताब का विमोचन किया गया। अब गांधी पर किसी किताब का प्रकाशित होना कोई आश्चर्य करने जैसी बात तो है नहीं। पिछले सौ सालों में गांधी पर जितनी किताबें लिखी गई हैं, उतनी शायद विश्व इतिहास के किसी दूसरे व्यक्ति पर नहीं लिखी गयीं। गांधी की मृत्यु के अब जबकि 73 वर्ष पूर्ण हो रहे हैं, फिर भी हर वर्ष गांधी पर केंद्रित, गांधी पर आधारित किताबों का लिखा जाना और उनका प्रकाशित होना यही दर्शाता है कि गांधी में लोगों की उत्सुकता कम होने की जगह दिन-ब-दिन बढ़ती ही गई है।

सो साल 2021 के पहले दिन गांधी पर किसी किताब का प्रकाशित होना क्यों कर इतनी उत्सुकता या आश्चर्य जगाने वाला हो? इसके दो कारण हैं—पहला, यह किताब गांधी के राष्ट्रवादी हिंदू बनने की कथा कहती है, ऐसा लेखक का दावा है, और वैसा ही इसका शीर्षक भी सुझाता है। दूसरे इस किताब का विमोचन उस संगठन के सर्वोच्च नेता ने किया, जिसका गांधी द्वेष पिछले कोई आठ दशकों से तो इस देश के लिए सुपरिचित है ही।

वह गांधी, जो अपने जीवन काल से ही हिंदुत्ववादी संगठनों के निशाने पर रहा, वह गांधी जिसको भारत के हिंदू राष्ट्र बनाने के अपने सपने की राह का सबसे बड़ा रोड़ा मानकर उसकी हत्या की कोशिशें कोई एक शती पहले ही शुरू कर दी गई थीं, वह गांधी, जिसकी हत्या में आज से 73 वर्ष पहले सफल हो जाने के बावजूद अब तक उसके बारे में झूठी-सच्ची कहानियां फैलाकर उसके चरित्र-हनन की कोशिश यही वर्ग लगातार कर रहा है, उसका इस तरह गांधी के शरणागत होना कुछ आश्चर्य, कुछ उत्सुकता और कुछ सवाल तो पैदा करता ही है।

इस पर जरा विस्तार से बात करने की जरूरत है। पहली बात इस गांधीद्वेषी समूह को इस तरह से गांधी को अपनाने की जरूरत क्यों महसूस हुई? इसके कई उत्तर हो सकते हैं। पहला, गांधी की हत्या के बावजूद उनके विचारों और उनकी प्रासंगिकता को खत्म करने की उनकी अब तक की तमाम कोशिशों की नाकामी। ऐसे में उन्हें अपना विरोधी साबित करने की जगह अपने में से ही एक साबित करके वैश्विक सोच वाले, सर्वधर्म सद्भाव के जीवंत प्रतीक गांधी की उदार छवि को नष्ट करने की कोशिश। और तीसरी बात यह कि उनके अपने पास वैश्विक या अखिल भारतीय अपील वाले किसी नायक का सर्वथा अभाव। वरना क्या यह जानना रोचक नहीं है कि हिंदुत्व के झंडाबरदार इस संगठन के पोस्टर पर्सन सावरकर खुद घोषित नास्तिक थे, बाद के समय में इस संगठन के प्रातःस्मरणीय मान लिए गए डॉ. अंबेडकर हिंदू धर्म का त्याग कर अपने लाखों अनुयायियों के साथ बौद्ध हो गए थे। कांग्रेस से छीनकर अपनाये जाने वाले सरदार पटेल खुद गांधी के कट्टर शिष्य रहे थे। कभी कभी ये भगतसिंह का नाम भी लेते हैं, जिन्होंने 'मैं नास्तिक क्यों हूँ' जैसी पुस्तक ही लिख दी थी। सो अखिल भारतीय अपील रखने वाला कोई नाम इनके अपने संगठन से कोई एक शताब्दी की कालावधि में भी उभरकर नहीं आ सका। फिर जिसे खत्म करना संभव न हो, उसे अपने रंग में रंग दो का सिद्धांत अपनाना स्वाभाविक ही है। स्वच्छता के पूरे आंदोलन में गांधी को उनके चश्मे तक सीमित करके इसका शुरुआती प्रयोग करके उसकी सफलता जाँच ली गई। अब बारी गांधी के वैश्विक दृष्टि वाले चश्मे की जगह अपना चश्मा लगाने की है, जिसका एक काँच हिंदू है और दूसरा राष्ट्रवादी। इन दोनों शब्दों के अर्थ पर व्यापक बहस हो सकती है, मगर इस संगठन की कोशिश उसे अपने सीमित और संकुचित अर्थ में ही बांधे रखने की है।

एक चालाकी तो इस पुस्तक के नामकरण में ही है। इसमें गांधी के एक हिंदू राष्ट्रवादी के रूप में निर्माण की कथा कही गई है। लेखक ने यूट्यूब पर उपलब्ध साक्षात्कार में यह स्पष्ट किया है कि इस पुस्तक में सिर्फ 1914 तक के गांधी का ही वर्णन-विश्लेषण किया गया है। अर्थात गांधी के भारत आने और स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व संभालने से पहले वाला कालखंड। जाहिर है, गांधी को हिंदू राष्ट्रवादी की छवि में बांधने की दृष्टि से इस कालखंड के बाद वाला गांधी बहुत असुविधाजनक है।

हिंदुओं के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित ग्रंथों में से एक गीता के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि जितने लोग उसे पढ़ते हैं, उसकी उतनी व्याख्याएं हो सकती हैं। हिंदू धर्म ग्रंथों में गीता से अधिक किसी दूसरी पुस्तक की व्याख्याएं नहीं हुई हैं। आदि शंकराचार्य से लेकर लोकमान्य तिलक और खुद गांधी तक यह परम्परा अबाधित रूप से प्रवाहित होती रही है। इस गीता को अपनी प्रेरणा और साधना का सबसे बड़ा स्रोत मानने वाले गांधी के साथ भी यह सुविधा बड़े पैमाने पर उपलब्ध हो जाती है।

गांधी विश्व इतिहास के सबसे अधिक प्रयोगशील महापुरुषों में से एक हैं। उनका संपूर्ण जीवन ही एक प्रयोगशाला था। गांधी अवतारी पुरुष नहीं थे। न ही वे जन्मजात महात्मा या संत थे। इस तरह के जो भी विशेषण उन्हें बाद के समय में दिए गए, उसके पीछे उनकी सतत साधना, प्रयत्न और प्रयोग कारणीभूत थे। वे बूंद–बूंद से बढ़ते हुए सागर में रूपांतरित हुए थे। गांधी विश्व इतिहास की उन चुनिंदा विभूतियों में से एक थे, जो नियमित और निरंतर रूप से विकासशील रहे हैं। शुरू से आखीर तक एक ऐसा विद्यार्थी, जिसका शिक्षण उसके अंतिम समय तक जारी रहा। गांधी ने अपने सामने आने वाले सिद्धांतों को अपने प्रयोगों की कसौटी पर लगतार कसा और

उसके परिणामों के अनुरूप अपने विचारों में भी परिवर्तन करते रहे।

सत्य और अहिंसा ये दो ही तत्त्व ऐसे हैं, जो जीवन भर अडिग रूप से गांधी की समस्त विचारधारा के केंद्र में रहे। लेकिन इन्हें धुरी बनाकर गांधी ने बहुत लम्बी यात्रा की। इतनी लम्बी कि 'ईश्वर ही सत्य है' का उनका सिद्धांत 'सत्य ही ईश्वर है' में रूपांतरित हो गया। गांधी को समझने के लिए इस पूरी यात्रा को समझना और इसके आधार पर गांधी के किसी विचार या सिद्धांत की व्याख्या करना जरूरी है।

गांधी ने खुद 1925 में ही यह साफ-साफ लिख दिया था कि मैं लकीर का फकीर नहीं हूँ। इसलिए संसार के विभिन्न धर्मग्रंथों की भावना को समझने का प्रयत्न करता हूँ। मैं उन्हें सत्य और अहिंसा की कसौटी पर कसता हूँ; वह कसौटी स्वयं इन ग्रंथों में ही निर्धारित है। जो कुछ उस कसौटी पर खरा नहीं उतरता, उसे मैं अस्वीकार कर देता हूँ और जो खरा उतरता है, उसे ग्रहण कर लेता हूँ।

यह सिर्फ धर्मग्रंथों के मामले में ही था, ऐसा नहीं है। हर सिद्धांत को गांधी की इसी कसौटी से गुजरना पड़ा है। अब ऐसे व्यक्ति पर किसी एक विचारधारा का लेबल लगाना कितना हास्यास्पद है! यदि बात सिर्फ हिन्दू धर्म की ही की जाए तो वेदों को अपौरुषेय मानने और तमाम धर्मग्रंथों में स्वार्थवश और बुरी नीयत से भर दिए गए क्षेपकों को भी सनातन सत्य का हिस्सा मान लेने की कट्टरवादियों की आपराधिक जिद का कोई अंश भी गांधी में नहीं दिखाई देता। इस मायने में गांधी बड़े खतरनाक हिंदू साबित होते हैं। वे साफ कहते हैं कि मैं उस ऐतिहासिक राम की उपासना नहीं करता, जिसके जीवन विषयक तथ्य ऐतिहासिक अन्वेषणों और अनुसंधानों की प्रगति के साथ-साथ बदलते रह सकते हैं। तुलसीदास का ऐतिहासिक राम से कोई मतलब नहीं था। इतिहास की कसौटी पर कसने से उनकी रामायण रद्दी के ढेर पर फेंक देने लायक रह जाएगी। लेकिन आध्यात्मिक अनुभूति की झांकियां देने वाली कृति के रूप में उनकी पुस्तक अद्वितीय है।

जाहिर है, गांधी की दृष्टि यहाँ बहुत साफ है। वे किसी भी धर्मग्रंथ में लिखी गई बातों को अंतिम सच नहीं मानते, बल्कि उन्हें देश, काल और परिस्थिति की कसौटी पर कड़ाई से कसते हैं और उनमें से जो खरी साबित होती हैं, केवल उन्हें ही ग्रहण करते हैं या मान्यता देते हैं। यही कारण है कि अपने विशुद्ध रूप में वर्ण व्यवस्था का प्रारंभिक काल में समर्थन करते हुए दिखने के बावजूद उन्हें इस बात में कोई संदेह नहीं है कि ज्ञान पर किसी भी श्रेणी या वर्ग का विशेषाधिकार नहीं हो सकता।

हजारों सालों तक धर्मग्रंथों में डाले गए क्षेपकों या गलतियों को सत्य मानकर अपने विशेषाधिकार के नाम पर समाज के एक बड़े वर्ग का शोषण करने और उनके साथ अमानवीय अत्याचार करने वाले हिंदुत्व के खाँचे में कोई गांधी को कैसे फिट कर सकता है, जो यह साफ-साफ कहते हैं कि अगर मैं प्राणों की बाजी लगाकर भी बुराई के खिलाफ युद्ध नहीं करूंगा तो मुझे ईश्वर का ज्ञान कभी नहीं होगा। धर्म के नाम पर सदियों से अनेक बुराइयों को स्वीकार करने वाले और प्रश्रय देने वाले हिंदुओं की पंक्ति में क्या यह गांधी कभी बैठाया जा सकता है?

ब्राह्मणत्व की गांधी की कसौटी बहुत साफ है—ज्ञान से प्रदीप्त निस्पृहता, अंतःकरण की शुद्धि और घोर तपस्या। विशेषाधिकार की चाह में अमानवीयता की हद को छूने वाले कब इस कसौटी पर खरे उतर सकते हैं!

जिस धार्मिक विद्वेष की बुनियाद पर अब गांधी को अपनाने की कोशिश करने वाले संगठन का जन्म हुआ और जिसे उसने मन-प्राण-कर्म से अब तक सुरक्षित रखा है, गांधी तो उस विद्वेष की बुनियाद पर ही हमला करते हैं। अपने को हिंदू बताते हुए वे कहते हैं कि एक हिन्दू के नाते मेरी सहज बुद्धि तो यही कहती है कि सभी धर्म न्यूनाधिक सच्चे हैं। सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वर से है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण हैं; क्योंकि वे हमें मनुष्य के द्वारा प्राप्त हुए हैं; और मनुष्य कभी पूर्ण नहीं होता। मूक प्राणियों के साथ मनुष्य के तादात्म्य के विचार को हिंदू धर्म की सबसे अनोखी देन मानने वाले गांधी से किसी भी आधार पर किसी दूसरे मनुष्य के साथ द्वेष की पुष्टि की उम्मीद भला कोई कैसे कर सकता है।

यहाँ बात सिर्फ धर्मग्रंथों में बाद के समय में डाले गए क्षेपकों की ही नहीं है। इन ग्रंथों में प्रतिपादित अनेक बातों को गांधी कालानुरूप न होने पर खारिज करने की वकालत करते हैं। वे बड़ी निर्भिकता से कहते हैं कि किसी भी धर्मग्रंथ में शाश्वत सत्य नहीं, बल्कि उनकी रचना के कालखंड में शाश्वत सत्य का आचरण किस प्रकार किया गया, यह बताया गया है। एक समय में देश, काल और परिस्थिति के अनुसार किए गए आचरण को इस समय में भी दोहराने को वे मूर्खता समझते हैं। वे इस तरह की किसी भी जड़ता को मानने से साफ इंकार करते हैं।

जिस तरह एक हिंदू के रूप में गांधी संकुचित चौखट में फिट नहीं किए जा सकते, ठीक वही स्थिति उन्हें राष्ट्रवादी बताने की भी है। दुर्भाग्य से वर्तमान में हमारा पूरा राष्ट्रवाद किसी दूसरे देश या धर्म के प्रति द्वेष, बैर और घृणा पर आधारित कर दिया गया है। क्या उस गांधी को राष्ट्रवाद की इस संकुचित परिभाषा में बैठाया जा सकता है, जो मानते हैं कि उनके लिए देशप्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है? वे किसी भी देश के नुकसान की बुनियाद पर भारत का हित नहीं चाहते। इससे उलट वे कहते हैं कि मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके। मैं यह नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों के नाश की नींव पर हो।

राष्ट्रवाद को और स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि राष्ट्रवाद में कोई बुराई नहीं है; बुराई तो उस संकुचन, स्वार्थवृत्ति और बहिष्कार-वृत्ति में है, जो मौजूदा राष्ट्रों के मानस में जहर की तरह मिली हुई है। गांधी भारतीय राष्ट्रवाद का विकास विशाल मानव-जाति के लाभ के लिए, उसकी सेवा के लिए चाहते हैं। वे कहते हैं कि हमारा राष्ट्रवाद दूसरे देशों के लिए कभी संकट का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि जिस तरह हम किसी को अपना शोषण नहीं करने देंगे, उसी तरह हम भी किसी का शोषण नहीं करेंगे। स्वराज्य के द्वारा हम सारी मानव-जाति की सेवा करेंगे।

गांधी के लिए देश की सेवा हो या मानव मात्र की सेवा हो, यह सब उनकी अखंड साधना के साधन मात्र हैं। जो इस सृष्टि के कण-कण में ईश्वर के व्याप्त होने के सिद्धांत

को मन-प्राण से मानता हो, उसे धर्म या राष्ट्र के नाम पर किसी से द्वेष या बैर करने के लिए किस तरह प्रवृत्त किया जा सकता है। उनका अंतिम लक्ष्य हमेशा मोक्ष रहा और इसकी प्राप्ति के लिए सभी मानव ही नहीं, बल्कि सभी प्राणियों से तादात्म्य स्थापित करना उनका साधन रहा। ऐसे में संकुचित अर्थों में उन्हें हिंदू राष्ट्रवादी साबित करने की कोई भी कोशिश हास्यास्पद हो जाती है।

मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जानकारी के प्रचंड विस्फोट वाले इस युग में सत्य और तथ्य के खोज की प्रवृत्ति बहुत क्षीण हो गई है। सौभाग्य से गांधी का लिखा व कहा बड़ी मात्रा में उपलब्ध है, मगर किसी संदर्भ के लिए उसे खोजने और खोजकर उसकी पुष्टि करने का धैर्य इस तेज गति से भागते संसार में कितने लोगों के पास होगा, यह कहना मुश्किल है।

फिर भी इस तरह की कोशिशों को पूरी तरह से नकारात्मक दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं है। इस तरह की किताबें यदि कुछ लोगों में भी गांधी को और अधिक जानने की इच्छा जगा सकें तो यह तो निश्चित ही है कि ऐसा करने वाला गांधी को पढ़ेगा और यदि उसकी दृष्टि और सोच पूरी तरह से साम्प्रदायिक विष से संक्रमित नहीं हो गई होगी तो वह गांधी विचारों की व्यापकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसे में गांधी विचार को नष्ट करने की कोशिश वाला ऐसा कोई भी दांव उलटा पड़ने की बड़ी संभावना है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है, जैसा कि पिछले 73 सालों से हो रहा है, गांधी विचार को मानने वाले हमेशा की तरह हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें। हर अवसर पर और हर माध्यम से उन विचारों की व्यापकता और प्रासंगिकता को अधोरेखित करने का कोई मौका उन विचारों में विश्वास रखने वाले को नहीं छोड़ना चाहिए।

गांधी को उगलकर नष्ट करने की तमाम कोशिशें असफल हो जाने के बाद अब गांधी को अपने रंग में रंगकर निगलने की कोशिश की जा रही है। सत्य की आजीवन साधना करने वाले गांधी का एक सच यह भी है कि गांधी को पचा पाना न कल आसान था, न आज है और न ही कल हो सकेगा। ❑

गांधी-मणि-मुक्ता

❑ मदनमोहन वर्मा

एक आश्चर्य की बात

एक आश्चर्य की बात है कि संसार के सभी धर्मों के लोग मुझे अपना समझते हैं। जैन मुझे जैन समझते हैं, बौद्ध मुझे बौद्ध समझते हैं और ईसाई मुझे ईसाई समझते हैं। कुछ ईसाई मित्र तो यह भी कहते हैं कि आप ईसाई हैं, डर के मारे आप यह स्वीकार नहीं करते। परन्तु आप क्यों नहीं खुल्लम खुल्ला कहते कि–'मैं ईसाई हूँ और प्रभु ईसा का साम्राज्य स्वीकार करता हूँ?' बहुत से मुसलमान भाई मुझे मुसलमान मानते हैं। इतना नहीं तो कम से कम मैं मुसलमान बनने की तैयारी में हूँ, ऐसा लोग कहते हैं। *—गांधी*

सत्य ही ईश्वर है

प्रेम के जैसा और कोई नशा नहीं है, जिसमें प्रेम है, वह किसी की हिंसा नहीं कर सकता। प्रेम तो मरना चाहेगा, किसी को मारना नहीं चाहेगा। अहिंसा मेरा धर्म है, मेरा ईश्वर है। सत्य मेरा धर्म है, मेरा ईश्वर है, सत्य को ढूँढ़ता हूँ तब अहिंसा कहती है कि मेरे द्वारा ढूँढो। अहिंसा को ढूँढ़ता हूँ, तब सत्य कहता है कि मेरे द्वारा ढूँढ़ो। *—गांधी*

सत्याग्रही की नीति

सत्याग्रही के लिए एक ही निश्चय होता है। वह न तो उस निश्चय को घटा सकता है, न बढ़ा सकता है, उस निश्चय में न तो क्षय की गुंजाइश होती है और न ही वृद्धि की। मनुष्य अपने लिए जो मापदंड निश्चित करता है, उसी मापदंड से जगत भी उसका मूल्य आंकने लगता है। ऐसी सूक्ष्म नीति का सत्याग्रही दावा करते हैं। *—गांधी*

सत्याग्रही प्रतिशोध नहीं लेता

सत्याग्रही यथासंभव अपने दुःखों और कष्टों की शिकायत नहीं करते और उनका बदला नहीं माँगते। बदला लेने की वृत्ति तो सत्याग्रही में होनी ही नहीं चाहिए। असामान्य कठिनाई में भी सत्याग्रही शांत रहता है। सत्याग्रही को लड़ाई तो मूल वस्तु के लिए ही करनी चाहिए। *—गांधी*

स्वराज की चाभी

यदि मानव इतना समझ जाए कि अन्यायपूर्ण कानूनों को मानना अमानवीय है, तो किसी भी मनुष्य का अत्याचार उसे गुलाम नहीं बना पाएगा। यही स्वराज या गृहराज की चाभी है। *—गांधी*

वचन पर विश्वास

जब तक किसी के वचन पर विश्वास न रखने का स्पष्ट कारण न हो, तब तक सत्याग्रही विश्वास रखता ही है। जिस सत्याग्रही ने दुःख को सुख मान लिया है, वह जहाँ अविश्वास का कोई कारण न हो, वहाँ केवल दुःख के भय से त्रस्त होकर विरोधी पर अविश्वास नहीं करेगा। परन्तु अपनी शक्ति पर विश्वास रखकर विरोधी पक्ष द्वारा दिये जाने वाले धोखे के बारे में निश्चिन्त रहेगा। चाहे जितनी बार धोखा खाने के बाद भी विरोधी पर विश्वास रखेगा तथा यह मानेगा कि ऐसा करने से सत्य का बल और बढ़ेगा और विजय अधिक निकट आयेगी। *—गांधी*

सत्याग्रही की नम्रता

सत्याग्रही की नम्रता की कोई सीमा नहीं होती, वह समझौते का एक भी मौका हाथ से जाने नहीं देता और इस कारण से कोई उसे कायर माने तो वह अपने को कायर मानने देता है। जिसके हृदय में विश्वास है और विश्वास से उत्पन्न होने वाला बल है, वह दूसरों की अवगणना की परवाह नहीं करता, वह अपने आंतरिक बल पर निर्भर करता है। इसलिए वह सबके प्रति नम्र बना रहता है और जगत के मत को शिक्षित बनाकर उसे अपने कार्य की ओर आकर्षित करता है। सत्याग्रह एक अमूल्य शस्त्र है, उसमें निराशा या पराजय के लिए कोई स्थान ही नहीं है। *—गांधी*

हमारे पुरखे, जिन पर हमें नाज़ है!

❑ चंचल

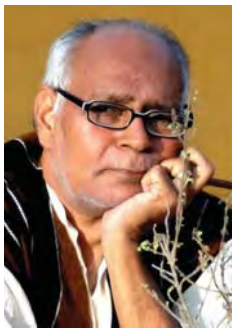

पूरे एक सौ एक साल पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक प्राध्यापक हुआ करते थे–जे बी कृपलानी। उन्होंने बापू के सगुण आंदोलन में साझेदारी करते हुए हाथ से बुने और बने कपड़ों का एक आश्रम खोला, जिसका नाम आज दुनिया में आदर के साथ लिया जाता है; वह है खादी आश्रम। इसकी शुरुआत में जिन लोंगो ने साथ दिया, उसमें पंडित जवाहर लाल नेहरू, डॉ शिव प्रसाद गुप्त, पंडित कमलापति त्रिपाठी वगैरह शामिल रहे । इसका नारा था–खादी : स्वाभिमान व स्वावलम्बन। विदेशी कपड़ों का मोह छोड़ो, स्वदेशी अपनाओ। यह खादी इतिहास बनता गया, यात्रा अभी तक जारी है।

इस खादी ने मोहनदास करमचंद गांधी को दुनिया का सबसे बड़ा पोस्टर डिजाइनर बना दिया। अंदाजा लगाइए कि एक गुलाम देश भारत में जब अंग्रेजी साम्राज्य की तूती बोल रही थी, भारत के परंपरागत जीवनयापन को तहस नहस कर दिया गया था, विदेशी महंगे सामानों से बाजार भर दिए गए थे, सरकारी शोषण अपने चरम पर था, ऐसे में एक अधनंगा फकीर हाथ का बना एक छोटा सा यंत्र चरखा लेकर खड़ा हो गया और उस साम्राज्य को चुनौती दी, जिसके दायरे में कभी सूरज नहीं डूबता था, यह इतिहास का बनना था। बिल्कुल निचले पायदान पर खड़े मजबूर और मजलूम इंसान को चरखा पकड़ाकर कहना–सूत कातो, कपड़ा बनाओ, स्वाभिमानी और स्वावलंबी बनो, यही सुराज है। चरखा आजादी की जंग का पोस्टर बन गया। चरखे पर सूत कातने वाला हर व्यक्ति, चाहे वह किसी जाति, किसी मजहब, किसी लिंग, किसी वर्ण का रहा हो वह कांग्रेसी मान लिया जाता था, गांधी का समर्थक हो जाता था, जंगे आजादी का सिपाही घोषित हो जाता था। तुर्रा यह कि इस चरखे पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लग सकता था। क्योंकि यह उत्पादन का जरिया भी था।

एक घटना, जो अब इतिहास का चमकदार हिस्सा है, जिस पर हर भारतीय को गर्व होना चाहिए। बापू गिरफ्तार थे, उन्हें 6 साल की सजा हुई थी। दुनिया की अदालत में लड़े गए मुकदमों की फेहरिस्त में यह अनोखा मुकदमा है। मुजरिम हैं मोहनदास करमचंद गांधी। अदालत हुक्म देती है कि मुजरिम को कटघरे में लाया जाए। गांधी लाठी के सहारे ठक ठक करते अदालत में प्रवेश करते हैं। बापू को देखते ही सबसे पहले जज अपनी कुर्सी

छोड़ कर खड़ा हो जाता है। फिर पूरी अदालत खड़ी होकर बापू को नमन करती है। दुनिया का सबसे छोटा मुकदमा है। गांधी ने अदालत से बस इतना ही कहा कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का रहना एक जुर्म है और हम इस जुर्म के खिलाफ हैं। जज 6 साल की सजा सुनाते हुए कहता है कि इस अदालत में न इस तरह का कोई मुजरिम आया है न कभी भविष्य में आएगा। हम 6 साल की सजा सुनाते हैं, लेकिन किसी वजह से हिज मेजेस्टी सजा खत्म कर देंगी, तो सबसे ज्यादा खुशी हमें होगी। और गांधी जी जेल चले गए ।

असल वाकया तो अब शुरू हुआ। महारानी विक्टोरिया से गांधी जी को शादी का एक निमंत्रण मिला। गांधी जी ने अपने हाथ से कते सूत से एक रुमाल बनाया और उसे भेज दिया। आज भी वह कपड़े का टुकड़ा रॉयल पैलेस का सबसे कीमती सामान माना जाता है।

× × ×

1975 में आपातकाल लगा। सारे नेता गिरफ्तार हुए। बनारस में खादी आश्रम का कोई कार्यक्रम था। मुख्य अतिथि थे पंडित कमलापति त्रिपाठी। अध्यक्षता के लिए पंडित जी ने जे बी कृपलानी का नाम रखा, उन दिनों कृपलानी जी बनारस राजघाट में रुके थे। वे गिरफ्तार नहीं किये गए थे। कार्यक्रम चला, अंत में कृपलानी जी बोलने खड़े हुए तो उन्होंने जम कर आपातकाल की आलोचना की। पंडित कमलापति त्रिपाठी चुपचाप बैठे सुनते रहे। कार्यक्रम के बाद लोंगो ने पंडित कमलापति से उलाहना दिया–कांग्रेस के मंच से कांग्रेस को कृपलानी जी ने बुरा भला कहा, आप कुछ बोले नहीं? पंडित जी मुस्कुराए–खादी केवल कांग्रेस की नहीं है, पूरे अवाम की है। कृपलानी जी को जब श्रीमती गांधी ने न गिरफ्तार करने की हिदायत दी है, तो हमारी क्या औकात कि हम उन्हें बोलने से रोक देते! एक बात याद रखना, इसी बनारस से, इसी विश्वविद्यालय से खादी आश्रम की शुरुआत हुई है और इसकी शुरुआत करने वाले कोई और नही हैं, खुद जे बी कृपलानी हैं, उस समय तो हम कम उम्र में थे, पर साथ थे।

यह रही कांग्रेस की रवायत। आज खादी सौ साल पूरे कर रही है। खादी को खादी से जुड़े लाखों लोंगो को बधाई।

काशी हिन्दू विश्विद्यालय के जागरूक छात्रों से एक गुजारिश है–आप उत्सव मनाइए। खादी पहनने और उसे प्रचारित करने का उत्सव। अपने अध्यापक जे बी कृपलानी के नाम का मंच बना कर दुनिया को बताइये कि ये रहे हमारे पुरखे, जिन पर हमें नाज है। ❑

ऐसे रसहीन न थे गांधी

❑ अरविन्द मोहन

कला और संस्कृति के बारे में गांधी की छवि ठीक नहीं बनी है और इसके चलते गांधी को समग्रता में समझना मुश्किल है. गांधी पश्चिमी शैतानी सभ्यता के खिलाफ जो वैकल्पिक सभ्यता हमारे सामने रखते हैं, उसमें कला संस्कृति का प्रमुख स्थान है. उसके बगैर मनुष्य की, श्रम की, आनन्द की, जीवन की भिन्नता नहीं बन सकती. पश्चिम की इस सभ्यता के निर्माण में भिन्न तरह की कला संस्कृति रही है. कलाओं के बारे में गांधी का ज्ञान, सोच, व्यवहार और सक्रियता उनकी सामान्य बनी छवि से मेल नहीं खाती.

लेकिन गांधी के कुल जीवन को देखें, लेखन और काम को देखें तो साफ लगेगा कि इस छवि के लिए सबसे ज्यादा वे खुद जिम्मेवार हैं. भोजन बेस्वाद, कपड़े का सिमटकर लंगोटी पर आना, फटी चप्पल, गृहस्थ से आश्रम जीवन, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संगीत के नाम पर राम धुन जैसे जो परिवर्तन वे लाते गए, वह सब उनके जीवन से रस गायब होने या सामान्य जीवन के हिसाब वाले रसों के क्रम को बदलने वाला था. कला के बारे में अपनी सोच और व्यवहार के बदलाव को बताने की कोई कोशिश उन्होंने नहीं की. खादी, ग्रामशिल्प, भजन, प्रार्थना, नन्दलाल बोस और मोरेश्वर खरे जैसे कलाकार साथियों के काम से भी उन्होंने कुछ नया करने का 'शोर' नहीं मचाया।

जिस रामधुन ने, जिस राम के नाम ने सबसे मुश्किल दौर में, नोआखाली के देहात में, साम्प्रदायिक आग से जलते कलकत्ता और दिल्ली के दंगाग्रस्त इलाकों में, मुल्क का बंटवारा स्वीकार करने में उनको बल दिया, जिस चित्र और मूर्ति शिल्प ने उनकी आंखों में आंसू ला दिए, जिस मसूर की मूर्ति को देखकर उन्हें काम देवता और उनकी औकात समझ आई, जो विश्वयुद्ध की बमबारी में यूरोप के गिरिजा और सुन्दर भवनों के नुकसान की खबर से रोता है, उस गांधी को कला की समझ न हो, यह मानना उसके साथ नाइंसाफी है. जिसके एक बार कह देने से कोई कलाकार जीवन भर गांधी के काम में लग जाता है, साहित्य रचता है, कोई गायक पैसा लेना बन्द कर देता है, चित्रकार बच्चों को चित्रकला सिखाने में जीवन लगा देता है, उस आदमी की समझ, कला-प्रेम और नैतिक बल की सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है.

गांधी कला की दुनिया में भी कुछ उसी तरह का बड़ा कर रहे थे, सोच रहे थे जैसा कि उन्होंने राजनीति में किया और आर्थिक मामलों में करना चाहते थे. राजनीति में सब कुछ जायज है वाली मान्यता को बदलकर इसमें नैतिकता की स्थापना करना, मुनाफे को केन्द्रीय मूल्य मानने वाली आर्थिक गतिविधियों के भी केन्द्र में नैतिकता को स्थापित करना, कला में भी वे यही हासिल करना चाहते थे, यह कहना शायद हल्की बात होगी. यह कहना ज्यादा सही होगा कि वे जो आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था चाहते थे, उसकी एक बुनियाद कला संस्कृति पर पड़नी है।

गांधी की नजर में कला में भी सत्य सर्वोपरि है. और इसी के चलते वे बाह्य खूबसूरती को लगभग शून्य मानते और आंतरिक सुन्दरता को ही सारा महत्व देते लगते हैं. फिर वे कला के कल्याणकारी स्वरूप अर्थात उसके शिव तत्व को महत्व देते हैं. सुन्दरता उनकी नजर में बहुत हल्के महत्व की चीज है. वे सत्यम, शिवम और सुन्दरम तो मानते हैं, लेकिन सुन्दरता को दोयम महत्व का ही मानते हैं. सत, चित और आनन्द में आनन्द को ज्यादा महत्व नहीं देते और यह भी मानते हैं कि तब की कला, खासकर पश्चिम की कला में सारा जोर आनन्द पर आना भी एक विकृति है. अपने प्रिय लोगों को वे इसके प्रति चेताते हैं और इनसे बचाने की बात करते हैं. लेकिन इसके चलते वे कला से दूर नहीं भागते. बल्कि वे कला को जीवन का, शिक्षा का आधार मानते हैं, संगीत की अनिवार्य शिक्षा के पक्ष में हैं. भजन और प्रार्थना गांधी के नाम से जुड़े हर संस्थागत काम का अनिवार्य हिस्सा है.

गांधी बहुत साफ ढंग से पश्चिम और पूरब की कला का अंतर देखते, बताते हैं और पूरी कला को धर्म से जुड़ा मानते हैं. राजनीति अल्पकालिक धर्म और धर्म दीर्घकालिक राजनीति है—जैसा सूत्र वाक्य उनके शिष्य लोहिया ने दिया। लेकिन उनको लगता है कि हमारी मूर्तियों और मन्दिरों को श्रद्धा के साथ तैयार किया गया है, जबकि बड़ी, ऊंची और भव्य पश्चिमी इमारतों और गिरिजों को श्रम के जोर पर. वे यह भी मानते हैं कि हमारी जलवायु, हमारा खुला आकाश, हमारा नक्षत्रमंडल हमें कृत्रिम खूबसूरती की जरूरत नहीं महसूस करने देता, जबकि यूरोप की जलवायु में तारों, आकाश और पेड़ पौधों का चित्र आंखों और मन की राहत के लिए जरूरी है.

कला के रसों का क्रम अपने हिसाब से निर्धारित करने के क्रम में वे शृंगार को 'फालतू' मानते हैं और सारी दुनिया के अच्छे साहित्य को पसन्द करते हैं पर कालिदास का नाम लेने से बचते हैं. आश्चर्यजनक ढंग से उनको वीर रस पसन्द है. वे कृष्ण के प्रेमी रूप को पसन्द नहीं करते. वे मीरा और सुदामा के कृष्ण प्रेम को पसन्द करते हैं. राम उनके सुपर हीरो हैं तो तुलसी और कबीर सबसे प्रिय कवि. असल में अल्पकालिक धर्म राजनीति में वे जो प्रयोग करते हैं, वे बहुत बड़े हैं, पर जल्दी नतीजा देने के चलते वे चर्चित और प्रचलित हुए. दीर्घकालिक धर्म होने के चलते कला वाले रसों का नया निर्धारण न तो जल्दी नतीजा देने वाला बना, न उन पर गांधी का ज्यादा जोर ही रहा. एक ही गांधी को इतना वक्त शायद था भी नहीं. और बाकी गांधीवादी उनसे भी ज्यादा गम्भीर बनकर बैठ गए. गांधी की कला विरोधी छवि इस वजह से भी मजबूत हुई.

गांधी को लेकर कई तरह की चर्चाओं ने भी उनकी इस छवि को पक्का किया है. जैसे आप नेट या सोशल मीडिया पर गांधी से जुड़ी सामग्री ढूढ़ेंगे तो इस तरह की चर्चा का अन्दाजा हो जाएगा. जैसे एक प्रकरण खजुराहो की नग्न मूतियों से जुडा है और इस चर्चा के अनुसार गांधी ने उन्हें तोड़ने का आदेश दे दिया था. रवीन्द्रनाथ टैगोर ने दखल देकर इसे रोकवाया. इस सीधे से किस्से के आगे पीछे आप कोई तथ्य ढूंढ़ने जाएंगे तो आपको निराशा हाथ लगेगी। जाहिर तौर पर इस जैसी अनेक धारणाओं ने गांधी की छवि बिगाड़ी है. आखिर गांधी का राजनैतिक और आर्थिक दर्शन और चिंतन भी ऐसी अनेक भ्रांतियों का शिकार होने के बाद निखरा है. ❑

गांधी की धर्मनिरपेक्षता

❑ के. विक्रम राव

महात्मा गांधी मनसा, वाचा, कर्मणा अप्रतिम सेक्युलर थे। अल्पसंख्यक उन पर बेहिचक भरोसा करते थे। मुसलमानों के वे अविचल सुहृद थे क्योंकि उनकी दृष्टि में इस्लाम के ये मतावलम्बी मात्र वोटर नहीं थे, खुद उनकी भांति हिन्दुस्तानी थे। हालांकि इतिहास का यह मान्य तथ्य है कि अविभाजित भारत में मुस्लिमों का बहुलांश मियाँ मोहम्मद अली जिन्ना के पीछे था और गांधी तथा उनके हमराह खान अब्दुल गफ्फार खान व मौलाना अबुल कलाम आजाद की अनसुनी करता था।

इसीलिए वेदना होती है, रोष भी, जब चन्द बहके भारतीय अधकचरी जानकारी के बूते विकृत बातें पेश करते हैं। इससे सेक्युलर राष्ट्रवाद का मन खट्टा होना स्वाभाविक है। मसलन कुछ उग्र हिन्दू कहते हैं कि तुर्की के खलीफा का समर्थन कर गांधीजी ने भारत में इस्लामी फिरकापरस्ती को खाद पानी दिया, पोषित किया। दूसरी तरफ खांटी जिन्नावादी मुस्लिम लीगी हैं, जो नारा बुलन्द करते थे पाकिस्तान का और रह गये खण्डित भारत में। आज भी वे बापू के बारे में वही राय रखते हैं, जो कभी राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने कहा था कि मुसलमान गांधीजी का ज्यादा अजीज़ है।

आधुनिक संदर्भ में जब हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों में विषाक्तता बढ़ रही है, यह विश्लेषण करना होगा कि क्या इस्लामी दुनिया के खलीफ़ा और तुर्की के अपदस्थ सुलतान मोहम्मद चतुर्थ को पुनर्प्रस्थापित करने हेतु खिलाफत आन्दोलन चलाया जाना बापू की भूल थी? इस्तांबुल स्थित ओटोमन खलीफा ने 1774 में रूस से युद्धोपरान्त एक संधि की थी, जिससे वह तुर्की के बाहर बसे मुसलमानों का मजहबी सरंक्षक बन गया था। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी, तुर्की और रूस को ब्रिटेन व अमरीका द्वारा हरा दिये जाने पर तुर्की की सल्तनत खत्म हो गई। अंग्रेजों ने पराजित सुल्तान का खलीफा पद अमान्य करार दिया। इससे 1920 से 1924 तक भारतीय मुसलमानों ने मौलाना मोहम्मद अली, उनके भाई मौलाना शौकत अली, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा. मुख्तार अहमद अंसारी, बैरिस्टर मोहम्मद जान अब्बासी आदि के नेतृत्व में भारतीय केन्द्रीय खिलाफत समिति बनाई, जिसने खलीफा को पुनः स्थापित करने हेतु आन्दोलन छेड़ा। गांधी जी इस केन्द्रीय समिति के सदस्य बने और मोतीलाल नेहरू ने उनके इस कदम का खुला समर्थन किया। मगर मोहम्मद अली जिन्ना ने खलीफा को बचाने का कड़ा विरोध किया। किन्तु गांधी जी के प्रयासों से पहली बार भारत के मुसलमान एकजुट होकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गये। खिलाफत और जंगे आजादी एक सूत्र में बंध गए, जिससे अंग्रेजी साम्राज्य डगमगा गया। बासठ वर्षों बाद (1857 से) दिल्ली में 23 नवम्बर 1919 के दिन राष्ट्रीय खिलाफत अधिवेशन हुआ। महात्मा गांधी ने इसकी सदारत की। मुसलमान प्रतिनिधियों ने गोकशी को प्रतिबंधित करने की मांग की। मगर गांधीजी ने कहा कि अभी वे गोहत्या पर चर्चा नहीं करायेंगे, क्योंकि इससे हिन्दू जन सौदेबाज लगेंगे। मुद्दा बस यही है कि ब्रितानी साम्राज्य को खत्म करना है और खलीफा को पुनर्स्थापित करके भारत की आजादी पर संयुक्त अभियान चले। अली बंधु और गांधीजी ने पूरे देश का साथ में दौरा किया। उनकी समस्याओं में मुसलमान और हिन्दू मिलकर तीन नारे बुलन्द करते थे–'अल्ला हो अकबर, वन्दे मातरम तथा भारत माता की जय।' गांधीजी की रणनीतिक रचना का इतना जबरदस्त प्रभाव पड़ा कि कराची में (8 जुलाई 1921) दूसरा खिलाफत अधिवेशन हुआ, जिसे शारदापीठ के तेलुगुभाषी शंकराचार्य जगदगुरू भारती कृष्णतीर्थ ने संबोधित किया। उनके साथ डा. सैफुद्दीन किचलू और पीर गुलाम मोजादीद भी मंच पर आसीन थे। महात्मा गांधी द्वारा खिलाफत संघर्ष में सक्रिय होने के बाद मौलाना मोहम्मद अली जौहर में गजब की वैचारिक तब्दीली आई। एक वर्ष पूर्व मौलाना ने भारतीय मुस्लिम लीग की लंदन इकाई के सुझाव को तिरस्कृत कर दिया था कि मुसलमान तथा हिन्दू मिलकर भारत में ब्रितानी हुकूमत से टक्कर लें। खिलाफत आंदोलन में गांधीजी की क्रियाशीलता से मौलाना अब हिन्दू-मुसलमान एकता के पैराकार बन गए। उधर मौलाना हसरत मोहानी ने खिलाफत संघर्ष के दौरान ही पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव रखा। दिल्ली की जामा मस्जिद के इमाम ने स्वामी श्रद्धानन्द का स्वराज पर प्रवचन कराया। अमृतसर में मुसलमान बड़ी तादाद में रामनवमी उत्सव में शामिल हुए। मुस्लिम लीग तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के अमृतसर में हुए संयुक्त अधिवेशन (1919) की मोतीलाल नेहरू तथा हकीम अजमल खाँ ने संयुक्त अध्यक्षता की। उर्दू में पोस्टर छपे कि महात्मा गांधी का फरमान है कि ब्रितानी राज का विरोध हो। खिलाफत आंदोलन का सर्वाधिक लाभ यह था कि पहली बार वह मुसलमानों की राजनीतिक चेतना में इतना अधिक उभर आया कि वे सब स्वतंत्रता आंदोलन में एकजुट हो गये।

लेकिन खिलाफत आन्दोलन का अन्त खुद तुर्की के मुसलमानों ने कर दिया, जब क्रान्तिकारी और सेक्युलर राष्ट्रपति मुस्तफा कमाल पाशा अतातुर्क ने खलीफा के पद को ही संभाल कर तुर्की को एक गणराज्य बनाने की नीति पक्की कर ली थी। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अब गांधीजी की कृतियों, भूमिका और रणनीति पर समग्रता से विचार करें कि आखिर बांटो और शासन करो वाली बर्तानवी नीति का सामना कैसे संभव था। इतना तो तय था कि हिन्दू और मुसलमान अलग रहते तो राष्ट्रीय आंदोलन लंगड़ा रहता। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (मई 1957) के बाद से मुसलमान शनैःशनैः साम्राज्य विरोधी संघर्ष से कटते गये। उनमें दो ही वर्ग रहा। एक था जमींदारों, नवाबों, खान बहादुरों और कठमुल्लों का जिन्हें बर्तानवी शासकों ने साम दाम से अपनी ओर कर लिया था। दूसरा था गुर्बत और जहालत से ग्रसित निम्न वर्ग, जिसके लिए आजादी के मायने दो जून की रोटी मयस्सर होना था। ये ऊँचे लोग मजहब के नाम पर लोकतांत्रिक परम्पराओं को कुचलकर झुण्ड प्रवृत्ति को

बढ़ाकर अपनी खुदगर्जी संवार रहे थे। तभी दक्षिण अफ्रीका में सफल जनसंघर्ष द्वारा अश्वेतों और एशिया मूल के लोगों को मानवोचित अधिकार दिलवा कर महात्मा गांधी का भारत आगमन हुआ। चम्पारण सत्याग्रह का प्रथम प्रयास अभूतपूर्व रूप से सफल हुआ था। इसके पूर्व राष्ट्रीय कांग्रेस केवल ज्ञापन, पैरवी, मिन्नत और विधान मंडलों में मनोनयन के प्रयासों को ही आन्दोलन मानती रही। महान विद्रोही लोकमान्य तिलक का निधन हो गया था। रिक्तता आ गई थी। ऐसे समय में गांधीजी ने दोनों को साथ पिरोना प्रारंभ किया। मुसलमानों को साथ जोड़ने का एकमात्र माध्यम था, मजहब और सियासत में संबंध स्थापित करना। बस इसीलिए खिलाफत आंदोलन का गांधीजी ने चतुर रणनीतिकार के नाते उपयोग किया। आंदोलन मजबूत हुआ। आज के युग से एक सदी पूर्व चले इस खिलाफत संघर्ष का विश्लेषण करें तो सम्यक और संतुलित मानक अपनाने होंगे। हर दौर के अपने विचार-प्रवाह और संस्थागत रुझान होते हैं। गत सदी में गांधी जी के समक्ष हिन्दू-मुस्लिम एकता ही बुनियादी मसला था। यूं भी महात्मा जैसा मानव, मानव में आस्था के नाम पर विषमता कैसे कर सकता है? इसीलिए बापू अपने साथियों को सहिष्णु और अहिंसक बनाने में लगे रहे। इसे उग्र हिन्दुओं ने उनकी कमजोरी करार दिया और गांधी जी को मुस्लिमप्रेमी कहा। परिणामस्वरूप इसी हिन्दू उन्माद ने नाथूराम गोडसे में अभिव्यक्ति पाई और घनीभूत घृणा ने एक वृद्ध, लुकाटी थामे, अंधनंगे, परम श्रद्धालु हिन्दू, जो राम का अनन्य, आजीवन भक्त रहा, की हत्या कर दी। ऐसे महात्मा गांधी की हत्या करने वाले उस चितपावन विप्र नाथूराम गोडसे से कौन विचारशील हिन्दू सहमत होगा? समर्थन करेगा?

गांधीजी ने विपन्न मुसलमानों में मजहबी माध्यम से सियासी चेतना और स्वाधीनता का भाव भरा था। जिन्ना और उनकी मुस्लिम लीग ने इस प्रगतिवादी परिवर्तन का प्रगतिशील तत्व मार दिया और मजहब की कट्टरता के बूते पृथक राष्ट्रवाद पनपाया। यहाँ गांधी जी अभावग्रस्त हो गये और राष्ट्रवादी मुस्लिम नेतृत्व समझौतावादी और असहाय हो गया। ❑

प्रार्थना, जो प्रार्थना के पूर्व ही स्वीकार हो गयी!

❑ कृष्ण कल्पित

रेलगाड़ी के तीसरे-दर्ज़े से भारत-दर्शन के दौरान मोहनदास ने वस्त्र त्याग दिये थे. अब मोहनदास सिर्फ़ लँगोटी वाला नँगा-फ़क़ीर था और मोहनदास को महात्मा पहली बार कवीन्द्र रवींद्र ने कहा. मोहनदास की हैसियत अब किसी सितारे-हिन्द जैसी थी और उसे सत्याग्रह, नमक बनाने, सविनय अवज्ञा, जेल जाने के अलावा पोस्टकार्ड लिखने, यंग-इंडिया अख़बार के लिये लेख व सम्पादकीय लिखने के साथ बकरी को चारा खिलाने, जूते गांठने जैसे अन्य काम भी करने होते थे.

राजनीति और धर्म के अलावा महात्मा को अब साहित्य-संगीत-संस्कृति के मामलों में भी हस्तक्षेप करना पड़ता था और इसी क्रम में वे बच्चन की 'मधुशाला' और उग्र के उपन्यास 'चॉकलेट' को क्लीन-चिट दे चुके थे और निराला जैसे महारथी 'बापू, तुम यदि मुर्गी खाते' जैसी कविताओं के जरिये उन्हें उकसाने की असफल कोशिश कर चुके थे.

युवा सितार-वादक विलायत खान भी गांधी को अपना सितार सुनाना चाहते थे। उन्होंने पत्र लिखा तो गांधी ने उन्हें सेवाग्राम बुलाया. विलायत खान लम्बी यात्रा के बाद सेवाग्राम आश्रम पहुंचे तो देखा गांधी बकरियों को चारा खिला रहे थे, यह सुबह की बात थी। थोड़ी देर के बाद गांधी आश्रम के दालान में रखे चरखे पर बैठ गये और विलायत खान से कहा–सुनाओ!

गांधी चरखा चलाने लगे घरर घरर की ध्वनि वातावरण में गूंजने लगी. युवा विलायत खान असमंजस में थे और सोच रहे थे कि इस महात्मा को संगीत सुनने की तमीज़ तक नहीं है. फिर वे अनमने ढंग से सितार बजाने लगे। महात्मा का चरखा भी चालू था–घरर घरर घरर घरर।

विलायत खान अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि थोड़ी देर बाद लगा जैसे महात्मा का चरखा मेरे सितार की संगत कर रहा है या मेरा सितार महात्मा के चरखे की संगत कर रहा है! चरखा और सितार दोनों एकाकार थे और यह जुगलबंदी कोई एक घण्टा तक चली। वातावरण स्तब्ध था और गांधीजी की बकरियाँ अपने कान हिला-हिला कर इस जुगलबन्दी का आनन्द ले रहीं थीं.

विलायत खान आगे लिखते हैं कि सितार और चरखे की वह जुगलबंदी एक दिव्य-अनुभूति थी और ऐसा लग रहा था, जैसे सितार सूत कात रहा हो और चरखे से संगीत निःसृत हो रहा हो!

30 जनवरी, 1948 को दोपहर 3 बजे के आसपास महात्मा गांधी हरिजन-बस्ती से लौटकर जब बिड़ला-हाउस आये, तब भी हल्की बूंदा-बांदी हो रही थी.

लँगोटी वाला नँगा फ़क़ीर थोड़ा थक गया था, इसलिये चरखा कातने बैठ गया. थोड़ी देर बाद जब संध्या-प्रार्थना का समय हुआ तो गांधी प्रार्थना-स्थल की तरफ़ बढ़े, कि अचानक उनके सामने हॉलीवुड सिनेमा के अभिनेता जैसा सुंदर एक युवक सामने आया, जिसने पतलून और क़मीज़ पहन रखी थी.

नाथूराम गोडसे नामक उस युवक ने गांधी को नमस्कार किया, प्रत्युत्तर में महात्मा गांधी अपने हाथ जोड़ ही रहे थे कि उस सुदर्शन युवक ने विद्युत-गति से अपनी पतलून से पिस्तौल निकाली और धाँय धाँय धाँय।

शाम के 5 बजकर 17 मिनट हुए थे नँगा फ़क़ीर अब भू-लुंठित था, हर तरफ़ हाहाकार, कोलाहल, कोहराम मच गया और हत्यारा दबोच लिया गया. महात्मा की उस दिन की प्रार्थना अधूरी रही.

आज़ादी के बाद मची मारकाट, साम्प्रदायिक दंगों और नेहरू-मण्डली की हरक़तों से महात्मा गांधी निराश हो चले थे. क्या उस दिन वे ईश्वर से अपनी मृत्यु की प्रार्थना करने जा रहे थे, जो प्रार्थना के पूर्व ही स्वीकार हो गयी थी! ❑

चिन्तन

गांधीजी के विचार और कार्य : एक विहंगम अवलोकन

❑ डॉ. रवीन्द्र कुमार

राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में गांधीजी के विचार और कार्य आलोचना-समालोचना के विषय रहे हैं तथा आज तक भी हैं. उनके सांस्कृतिक विचारों से स्वयं उनके जीवनकाल में उन्हीं के निकट साथियों-सहयोगियों सहित अनेक अन्य लोग भी असहमत रहे, और वर्तमान में भी हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है. वैचारिक मतभेद और कार्यपद्धति से असहमति होना कोई अस्वाभाविक स्थिति नहीं है. यह सदा से विद्यमान स्थिति है.

इतना ही नहीं, संसार भर में हज़ारों की संख्या में गांधी जी पर उन्हीं के जीवनकाल में और उनके निधन के बाद भी उनके जीवन, कार्यों तथा विचारों को केन्द्र में रखकर ग्रन्थ लिखे गए, उन पर शोधकार्य हुए. अभी भी हो रहे हैं. विश्व भर में अनेक विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षण संस्थानों में गांधी-अध्ययन व शोध केन्द्र स्थापित हैं. इसके बाद भी शिक्षा-जगत उन्हें विधिवत विद्वान मानने को तैयार नहीं है। हम सभी इस बात से परिचित हैं कि स्वयं भारत में गांधीजी के राजनीतिक और सामाजिक विचारों, उनके सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक दृष्टिकोण तथा आर्थिक सोच की अनेक द्वारा आलोचना की गई तथा अभी भी की जाती है. उनके विचारों और कार्यों के अति तीखे आलोचक आज भी हैं, जो विशेषकर उनके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारों पर, उनके आमजन केन्द्रित होने के बाद भी, प्रश्नचिह्न लगाते हैं.

राजनीति को प्रत्येक स्थिति में नैतिकता से सम्बद्ध रखने के लिए गांधीजी अपने राजनीतिक आलोचकों के निशाने पर रहे. राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा की परिधि में ठहरते हुए उनके द्वारा की गईं जनकार्यवाहियाँ भी आलोचना का शिकार हुईं. आलोचकों ने नैतिकता और अहिंसा, दोनों की मूल भावना, जो प्राणिमात्र के प्रति सक्रिय सद्भावना है, तथा उनकी अन्तिम कसौटी, जो कृत्य में पीछे रहने वाली भावना है, जिसे स्वयं गांधीजी ने बार-बार भली-भाँति स्पष्ट किया, से साक्षात्कार किए बिना ऐसा किया.

आलोचना के शिकार

गांधीजी राष्ट्रवाद, समाजवाद और संस्कृति सम्बन्धी विचारों के लिए समाजशास्त्रियों की आलोचना के शिकार हुए. उनकी पुस्तक हिन्द स्वराज, इसीलिए तीव्र आलोचना का पात्र बनी. आलोचकों ने गांधीजी के राष्ट्रवाद में वृहद् मानवतावाद के स्थान पर आँखें मूंदकर एकांगिकता देखी. उनके कथन, 'मेरे लिए देशप्रेम और मानव-प्रेम में कोई भेद नहीं है; दोनों एक ही हैं; मैं देशप्रेमी हूँ, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूँ' की जाने-अनजाने अनदेखी कर उनके राष्ट्रवाद-सम्बन्धी विचारों को पश्चिम के राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के ही समान मानकर उनकी भी आलोचना की। यही नहीं, गांधीजी के स्पष्ट और अति प्रगतिशील कथन (वृहद् मानव कल्याण-भावना को हृदय में रखकर सजातियों के वृहद् सहयोग, सहकार और सौहार्द के साथ विकासपथ पर निरन्तर आगे बढ़ना होगा, आगे नहीं बढ़े, तो पीछे गिरना होगा') को आलोचकों ने अनदेखा कर, उनके विचारों में रूढ़िवादिता देखी.

विशेषकर ग्रामों के देश भारत में आमजन को आजीविका की प्रत्याभूति प्रदान करते, लोगों की आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करते और देश की अर्थव्यवस्था में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते लघु उद्योगों और कृषि से जुड़े कुटीर उद्योगों को गांधीजी द्वारा भारी उद्योगों की अपेक्षा प्राथमिकता दिया जाना, बड़े उद्योगों के समर्थक अर्थशास्त्रियों, उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, पश्चिम के समाजवाद समर्थकों, साम्यवादियों आदि को रास नहीं आया.

सर्व-समानता की सार्वभौमिक सत्यता

स्वानुभूति द्वारा सर्व-समानता की सार्वभौमिक सत्यता को स्वीकार करते हुए, सबके कल्याण में ही अपना कल्याण देखते हुए, नैतिकता का आलिंगन करते हुए भूमि, धन-सम्पदा, पूंजी आदि का अपने को ट्रस्टी समझते हुए प्राप्तियों का व्यक्ति द्वारा व्यापक जनहित में सदुपयोग गांधीजी के संरक्षकता सिद्धान्त की मूल भावना थी। इसके माध्यम से उन्होंने अंत्योदय व सर्वोदय का आह्वान किया, जिसका विशुद्ध उद्देश्य प्रत्येक जन को, किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना, समान रूप से समुचित अवसर सुलभ कराकर, उसे उसके चहुँमुखी विकास हेतु सक्षम बनाना था.

लेकिन व्यक्तिवादियों, गुण-सर्वोच्चता की मानसिकता पालने वालों अथवा सम्पन्नता को अपना जन्मजात एकाधिकार मानने वालों को महात्मा गांधी का ऐसा विचार क्यों पसन्द आए? महात्मा गांधी नैतिक विकास के बल पर साधन संपन्न जन–उद्योगपतियों, पूंजीपतियों और जमींदारों के हृदय परिवर्तन के माध्यम से उन्हें संसाधनों व धन-सम्पदा के स्वामियों से न्यासियों के रूप में परिवर्तित करना चाहते थे, लेकिन उनके निधनोपरांत भूदान आंदोलन जैसी एक सफल व अभूतपूर्व घटना के साकार रूप लेने के बाद भी, हिंसा द्वारा ही प्रत्येक परिवर्तन की सम्भावना को स्वीकार करने वालों को उनका दृष्टिकोण आजतक भी स्वीकार्य नहीं है।

संस्कृति-सम्बन्धी गांधी-विचार

'हम पहले अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें और उसे आत्मसात् करें; दूसरी संस्कृतियों के सम्मान की, उनकी विशेषताओं को समझने और स्वीकार करने की बात उसके बाद ही आ सकती है, उससे पहले कभी नहीं'। गांधीजी का यह विचार बहुतों को पसन्द नहीं आया। यद्यपि संस्कृति सम्बन्धी अपनी इस बात के प्रारम्भ में ही उन्होंने यह भी कहा, 'मेरा यह (कदापि) कहना नहीं कि हम शेष विश्व से बच कर रहें या आसपास दीवारें खड़ी कर लें; यह तो मेरे विचार से बहुत दूर भटक जाना है', लेकिन संस्कृति के वास्तविक अर्थ और उद्देश्य को जाने-अनजाने न समझते हुए अपने धर्म-

सम्प्रदाय, पंथ अथवा समुदाय से ही इसे जोड़कर देखने वालों के लिए संस्कृति-सम्बन्धी गांधी-विचार अपाच्य रहा, और अभी भी है.

बुनियादी शिक्षा-सम्बन्धी विचार

शिक्षा-जगत में उन्हें विधिवत विद्वान न माने जाने की बात मैं पहले ही कह चुका हूँ, यद्यपि मेरे दृष्टिकोण से गांधीजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार अद्वितीय हैं. अपने शैक्षणिक विचारों के आधार पर वे एक श्रेष्ठ शिक्षाविद के रूप में स्थापित होते हैं. चार पक्षीय शिक्षा-व्यवस्था सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण व्यक्तित्व के चहुँमुखी विकास का श्रेष्ठ मार्ग है. उनका बुनियादी शिक्षा-सम्बन्धी विचार आज भी न केवल प्रासंगिक है, अपितु शिक्षा की मूल भावना और उद्देश्य-प्राप्ति हेतु कारगर है.

संक्षेप में तात्पर्य यह कि विश्व भर में लाखों-करोड़ों लोगों द्वारा गांधी को अपना आदर्श मानने, उनके अहिंसा-केन्द्रित मार्ग एवं कार्यों से सीख लेकर समानता, स्वाधीनता, अधिकार और न्याय-प्राप्ति की आशा रखने एवं उद्देश्य-प्राप्ति की कामना करते हुए अपने को संघर्षों में झोंकने वालों की उपस्थिति के बाद भी उनके सभी विचार, कार्य, यहाँ तक कि उनके निजी जीवन की घटनाएँ भी, न्यूनाधिक, आलोचनाओं से परे नहीं रहीं. वे आजतक भी आलोचनाओं-समालोचनाओं का विषय हैं, और ऐसा सबसे अधिक स्वयं भारत में है.

गांधी-विचार आलोचनात्मक विश्लेषण के बाद अपने बड़े-से-बड़े आलोचक को अन्तर की गहराइयों तक झकझोरता है. *मार्टिन लूथर किंग जूनियर, जो प्रारम्भ में गांधीजी के अहिंसा-केन्द्रित विचार और मार्ग के यदि पूर्णतः आलोचक नहीं थे, तो उससे पूर्णतः सहमत भी नहीं थे, गांधी-विचार के मूल में जाने के बाद की उनकी स्वीकारोक्ति इस वास्तविकता का एक उत्कृष्ट उदहारण है। गांधी-दर्शन और गांधीजी द्वारा अहिंसा के बल पर किए जनकार्यों का पूर्वाग्रह मुक्त स्थिति में, ईमानदारी से विश्लेषण करने के उपरान्त, मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा था, 'गांधी के अहिंसक प्रतिरोध दर्शन में मैंने केवल नैतिकता से भरपूर और व्यावहारिक दृष्टि से सुदृढ़ वह उपाय पाया है, जो सताए हुए लोगों को अपनी स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए सुलभ है'.*

नेल्सन मण्डेला : गांधी-विचार

अपने सार्वजनिक जीवन के पूर्वार्द्ध में नेल्सन मण्डेला गांधी-विचार और अहिंसा-मार्ग से पूर्णतः सहमत नहीं थे. दक्षिण अफ्रीका के मण्डेला से जुड़े घटनाक्रम और उनके संघर्ष वृतान्त से परिचितजन, विषय-विशेषज्ञ और इतिहासकार यह जानते हैं कि एक समय ऐसा भी आया, जब वे इससे बहुत दूर चले गए थे। लेकिन अन्ततः *जीवन के उत्तरार्द्ध में स्वतंत्रता के ध्येय-प्राप्ति के द्वार पर खड़े मण्डेला ने यह स्वीकार किया कि अहिंसा-मार्ग का वास्तव में कोई विकल्प नहीं है.*

ये दो स्वीकारोक्तियाँ–मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेल्सन मण्डेला के कथन–अनायास ही नहीं थे. दोनों ने दमन व अत्याचारों के शिकार लोगों के लिए संयुक्त राज्य अमरीका और दक्षिण अफ्रीका में सतत संघर्ष किए थे। यह, निस्सन्देह, उनके द्वारा शुद्ध हृदय से गांधी-विचार और मार्ग की मूल भावना को समझने, तदनुरूप की गई कार्यवाहियों (मण्डेला के सन्दर्भ में न्यूनाधिक) और, जैसा कि कहा है, संघर्षों में हुए अनुभवों, उपलब्धियों का परिणाम था.

गांधी-विचार के मूल में सार्वभौमिक एकता की सत्यता विद्यमान है। सार्वभौमिक एकता, सर्व-समानता और सर्व-कल्याण का आह्वान करती है. सर्व-समानता की वृहद् अवधारणा में प्राणिमात्र सम्मिलित है. इसमें सृष्टि के सर्वश्रेष्ठ प्राणी के रूप में मनुष्य, जिसे बुद्धि और रचनात्मकता जैसे अद्वितीय महागुण प्राप्त हैं, जिनके बल पर वह अपने मानवीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए सजातियों के वृहद् सहयोग द्वारा सर्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम है, प्राथमिकता पर है. महात्मा गांधी के विचारों की यह मूल भावना उन्हें महात्मा के रूप में स्थापित करती है.

प्राणिमात्र को केन्द्र में रखते हुए गांधीजी ने कहा, 'मैं केवल मनुष्य नाम से पहचाने जाने वाले प्राणियों के साथ भ्रातृत्व और एकात्मता ही नहीं सिद्ध करना चाहता हूँ, अपितु समस्त प्राणियों के साथ, रेंगने वाले साँप आदि के साथ भी उसी एकात्मता का अनुभव करना चाहता हूँ, क्योंकि हम सब उसी एक स्रष्टा की सन्तति होने का दावा करते हैं और इसीलिए सभी प्राणी, उनका रूप चाहे कुछ भी हो, मूलतः एक ही हैं।'

उन्होंने कहा कि मेरा मिशन केवल भारतीय भ्रातृत्व तक ही सीमित नहीं है; मेरा मिशन केवल हिन्दुस्तान की स्वाधीनता तक भी सीमित नहीं है, भले ही आज मेरा सारा जीवन इसी के लिए समर्पित हो और सारा समय भी इसी पर केन्द्रित हो। लेकिन, भारत की स्वतंत्रता द्वारा वृहद् मानव भ्रातृत्व के अपने कार्य को आगे बढ़ाना ही वास्तव में मेरा मिशन है।

अपने विचारों को और आगे बढ़ाते हुए तथा विशेष रूप से देशभक्ति को केन्द्र में रखते हुए गांधीजी ने कहा, 'मेरा देशप्रेम कोई बहिष्कारशील वस्तु नहीं, अपितु अतिशय व्यापक वस्तु है और मैं उस देशप्रेम को वर्ज्य मानता हूँ, जो दूसरे राष्ट्रों को कठिनाई देकर अथवा उनका शोषण करके अपने देश की उन्नति चाहता है। *देशप्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह सदैव, बिना किसी अपवाद के प्रत्येक स्थिति में, मानव-जाति के विशालतम हित के साथ सुसंगत होनी चाहिए।'*

सर्व-कल्याण की कामना

गांधीजी के मात्र एक समय पर व्यक्त मानव-भ्रातृत्व, एकता, समानता और सर्व-कल्याण की कामना करते विचारों का यह एक उदहारण है. यह अन्ततः उनकी सार्वभौमिकता को समर्पित सिद्धान्त और मार्ग को स्पष्टता से सामने लाता है. उन्होंने निरन्तर जीवन भर इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए तथा सर्वोत्थान की कामना की. उन्होंने इसी उद्देश्य के लिए कार्य किए, संघर्ष किए. वर्ष 1939 ईसवी में गांधीजी ने द्वितीय विश्व युद्ध में सरदार वल्लभभाई पटेल, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसे वरिष्ठ नेताओं और अपने निकटवर्ती साथियों की इच्छा के विरुद्ध जाकर, भारत को स्वाधीनता दिए जाने की प्रत्याभूति की शर्त पर भी

साम्राज्यवादियों को सहयोग देने से मना कर दिया. कारण, महायुद्ध में मानवता का कुचला जाना था. निर्दोषजन का रक्त बहना था. लेशमात्र भी कल्याण नहीं, विनाश होना था, और वही हुआ.

भारत छोड़ो आन्दोलन –अगस्त क्रांति

'भारत अपनी स्वाधीनता और प्रगति से विश्व के प्रत्येक जन की स्वतंत्रता के लिए अपने को समर्पित करेगा', इस आशा के साथ महात्मा गांधी ने वर्ष 1942 ईसवी में 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा दिया। गांधीजी ने उस समय ऐसा करते हुए वास्तव में वर्ष 1925 ईसवीं के अपने दो अति उल्लेखनीय कथनों के अनुरूप ही भारत की स्वाधीनता एवं समृद्धि के बल पर विश्व कल्याण और संसार के प्रत्येकजन के उत्थान की बात को दोहराया था.

वर्ष 1925 ईसवी में उन्होंने यह स्पष्टतः कहा था, 'मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि सारा संसार उससे लाभ उठा सके. मैं यह (कदापि) नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों के नाश की नींव पर हो', मैं भारत को स्वतंत्र और बलवान बना हुआ देखना चाहता हूँ, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि वह संसार के भले (कल्याण) के लिए स्वेच्छापूर्वक अपनी पवित्र आहुति दे सके'.

विशुद्ध मानव-कल्याण की भावना

गांधीजी के कथनों में विशुद्ध मानव-कल्याण की भावना थी. यही उनके विचारों का मूल और उनकी साधुता–पुण्यता की पहचान है. इसी के आधार पर उनके विचारों और तदनुरूप किए गए कार्यों को आज समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर भारत ही नहीं, विश्व भर में सभी आम और खासजन द्वारा समझे जाने की नितान्त आवश्यकता है. देश-काल की परिस्थितियों की माँग के अनुसार गांधी-विचार को परिमार्जित कर, अनुकूल बनाकर, साथ ही उसकी मूल भावना को यथावत रखते हुए, अपनाए जाने की आवश्यकता है .

(पद्मश्री और सरदार पटेल राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित डॉ. रवीन्द्र कुमार भारतीय शिक्षा-शास्त्री एवं मेरठ विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति हैं.-सं.) ❑

चंपारण किसान आंदोलन के लिए गांधी को ही क्यों बुलाया!

❑ डॉ. चंद्रविजय चतुर्वेदी

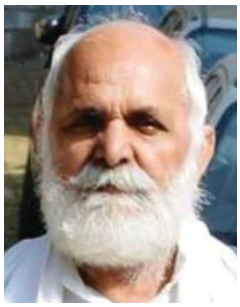

सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन को अंग्रेजों ने दबा दिया था, परन्तु अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष की ज्वाला सर्वाधिक रूप से किसानों के दिल में ही धधकती रही। देश के किसान ही अंग्रेजी हुकूमत की नीतियों से सर्वाधिक शोषित, प्रताड़ित होते रहे। ब्रिटिश हुकूमत के लिए, देशी रियासतों, जमींदारों के लिए सबसे बड़ा करदाता किसान ही होता रहा, जिसके बल पर सब ऐश करते थे।

अंग्रेजी राज में समय समय पर किसान आंदोलन हुए। किसानों ने आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई और अंग्रेजी हुकूमत की चूलें हिलाकर रख दीं। आजादी के पहले के किसान आंदोलनों पर गांधी का स्पष्ट प्रभाव रहा है, जिससे वे पूर्ण अहिंसक रहे। चम्पारण सत्याग्रह गांधी के लिए पहला किसान आंदोलन और सत्याग्रह था, जिसने एक इतिहास रच दिया। इस सत्याग्रह का महत्वपूर्ण पहलू है कि नेतृत्व के लिए किसानों ने गांधी को ही क्यों आमंत्रित किया, जबकि उस युग में गांधी से बड़े नेता बाल गंगाधर तिलक, एनी बेसेंट और पंडित मदनमोहन मालवीय के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद थे तथा बिहार में ब्रजकिशोर बाबू और मजहरुल हक़ जैसे नेता उपलब्ध थे। चम्पारण के किसानों ने अपने एक प्रतिनिधि राजकुमार शुक्ल के द्वारा जो पत्र 27 फरवरी 1917 को गांधी के पास भेजा, वह एक ऐतिहासिक धरोहर है–

मान्यवर महात्मा,

आपने उस अनहोनी को प्रत्यक्ष कर दिखाया, जिसका टालस्टाय जैसे महात्मा केवल विचार करते थे। इसी आशा और विश्वास के वशीभूत होकर हम आपके निकट अपनी रामकहानी सुनाने के लिए तैयार हैं। हमारी दुख भरी कथा, दक्षिण अफ्रीका के अत्याचार, जो आप और आपके अनुयाइयों और सत्याग्रही बहनों-भाइयों के साथ हुआ, से कहीं अधिक है। हम अपना वह दुःख, जो हमारी उन्नीस लाख आत्माओं के हृदय पर बीत रहा है, आपको सुनाकर आपके कोमल हृदय को दुखित करना उचित नहीं समझते। बस केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप स्वयं आकर अपनी आखों से देख लीजिये, तब आपको अच्छी तरह से विश्वास हो जाएगा कि भारतवर्ष के एक कोने में यहाँ की प्रजा, जिसको ब्रिटिश छत्र की सुशीतल छाया में रहने का अभिमान प्राप्त है, किस प्रकार के कष्ट सहकर पशुवत जीवन व्यतीत कर रही है।

हम और अधिक न लिखकर आपका ध्यान उस प्रतिज्ञा की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं, जो लखनऊ कांग्रेस के समय और फिर वहां से लौटते समय आपने की थी कि मैं मार्च या अप्रैल महीने में चम्पारण आऊंगा। बस अब समय आ गया है। श्रीमन अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करें। चम्पारण की उन्नीस लाख दुखी प्रजा श्रीमान के चरण कमल के दर्शन के लिए टकटकी लगाए बैठी है और उन्हें आशा ही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार भगवान राम के चरणस्पर्श से अहिल्या तर गई, उसी प्रकार श्रीमान के चम्पारण में पैर रखते ही हम उन्नीस लाख प्रजा का उद्धार हो जाएगा।

गांधी चंपारण आये

दक्षिणी अफ्रीका से गांधी जी 1915 में स्थाई रूप में भारत लौटे और उन्होंने देशव्यापी दौरा प्रारंभ किया। प्रबुद्ध वर्ग में दक्षिणी अफ्रीका के गांधी की एक शोहरत थी कि वहां उन्होंने सामान्यजनों के अहिंसक सत्याग्रही आंदोलन से शासकों को झुकने और अमानवीय सरकारी आदेशों को रद्द करने के लिए मजबूर किया था। चम्पारण के किसानों पर निलहों के अत्याचार से मुक्ति और उनकी सामुदायिक बदहाली को दूर करने के लिए गांधी जी 10 अप्रैल 1917 को बांकीपुर पहुंचे। गांधी जी

चम्पारण के बारे में कुछ नहीं जानते थे, बस इतना जान पाए थे कि किसान ब्रिटिश हुकूमत की नीतियों से त्रस्त हैं।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 के बाद जितने भी किसान आंदोलन हुए, उनकी परिणति गुरिल्ला युद्ध जैसी हिंसक हो गई, परिणामतः बर्बर हुकूमत द्वारा उन्हें बुरी तरह कुचल दिया गया। गांधी की दृष्टि समस्याओं के समाधान के लिए अहिंसक रही। उन्होंने जिला प्रशासन से बात की, नील प्लांटर एसोसिएशन के पदाधिकारियों से मिले और पारदर्शिता के साथ अपना मंतव्य स्पष्ट किया।

गांधी के चम्पारण आने पर सरकार घबरा गई, गांधी बिहार से बाहर चले जाएँ, इसके लिए धारा 144 के तहत निषेधाज्ञा लगा दी गई। 18 अप्रैल 1917 को निषेधाज्ञा भंग करने के आरोप में मोतिहारी के मजिस्ट्रेट के समक्ष गांधी जी ने जो बयान दिया, वह दुनिया के सत्याग्रह आंदोलनों के लिए एक मार्गदर्शक ऐतिहासिक दस्तावेज है। गांधी जी ने कहा, **'अदालत की अनुमति से मैं यह बात संक्षिप्त में बताना चाहता हूँ कि नोटिस के द्वारा मुझे अपराध संहिता की धारा 144 के तहत जो आदेश दिया गया है, उसकी अवज्ञा-सा लग रहा गंभीर फैसला मैंने क्यों किया। मेरी विनम्र राय है कि यह स्थानीय अधिकारियों और मेरी समझ के अंतर भर का सवाल है। मैं इस देश में राष्ट्र और मानव सेवा करने की मंशा से आया हूँ।'**

अदालत में गांधीजी का बयान

मुझे यहाँ आने का दबाव भरा न्यौता इस आधार पर दिया गया कि नील की खेती करने वाले रैयतों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते और मैं आकर यह देखूं तथा उनकी मदद करूँ। समस्या को जाने बिना मैं कोई मदद नही कर सकता। मैं तो शासन तथा निलहों की मदद से अध्ययन के लिए आया हूँ। मेरा कोई दूसरा उदेश्य नहीं है। और मैं यह नहीं मान सकता कि मेरे यहां आने से सार्वजनिक शांति भंग होगी और लोगों की जान का नुकसान होगा। मैं ऐसे मामलों में पर्याप्त अनुभव का दावा कर सकता हूँ। पर प्रशासन ने इस यात्रा को लेकर अलग ही राय बनाई। मैं उनकी मुश्किलों को पूरी तरह समझता हूँ और मानता हूँ कि उनको जैसी सूचना दी जाती है, वे उसी के आधार पर काम करते हैं।

कानून का पालन करने वाला नागरिक होने के नाते मेरे मन में भी सबसे पहले यही ख्याल आया कि इस आदेश को मान लूँ। पर ऐसा करने से मेरे अपने कर्तव्य बोध और मुझे बुलाने वालों की उम्मीद का उल्लंघन होता है। मैं मानता हूँ कि अभी मैं उनके बीच रहकर ही उनका काम कर सकता हूँ। इसके चलते मैं स्वेच्छा से यह काम नहीं छोड़ सकता। कर्तव्यों के टकराव में मैं यही कर सकता हूँ कि खुद को यहाँ से हटाने, न हटाने की जवाबदेही शासन पर छोड़ दूँ। मैं भलीभांति जानता हूँ कि भारत के सार्वजनिक जीवन में मेरी जैसी स्थिति वालों को आदर्श उपस्थित करने में बहुत सतर्क रहना पड़ता है।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस स्थिति में मैं हूँ, उस स्थिति में प्रत्येक आत्मसम्मानी व्यक्ति को वही काम करना चाहिए, जो इस समय मैंने करने का निश्चय किया है और वह यह कि मैं बिना किसी प्रकार का विरोध किये आज्ञा न मानने का दंड भुगतने के लिए तैयार हो जाऊं। मैंने जो बयान किया, उसके पीछे कहीं भी यह इच्छा नहीं है कि मुझको जो दंड मिलने वाला है, उसमें किसी प्रकार की कमी की जाये। मेरे बयान का उदेश्य यह दिखलाना है कि मैंने सरकारी आदेश की अवज्ञा शासन के प्रति अश्रद्धा के चलते नहीं की है, बल्कि मैंने उससे उच्चतर आज्ञा, अपने बुद्धि-विवेक की आज्ञा का पालन करना उचित समझा।

पूरे समाज का आंदोलन

गांधी पर चलाया गया मुकद्दमा 20 अप्रैल को वापस ले लिया गया और उन्हें यह अनुमति प्रदान कर दी गई कि वे चम्पारण की रैयतों की स्थिति का अध्ययन करें, जिसमें प्रशासन भी उनका सहयोग करेगा। पूरे देश में ही नहीं, दुनिया के अखबारों में इस सत्याग्रह की चर्चा हुई। गांधी न तो चम्पारण की बोली भोजपुरी जानते थे और न वहां के कैथी लिपि से ही परिचित थे। बिहार के बड़े बड़े वकील और समाजसेवी चम्पारण में गांधीजी के सहयोग के लिए उपस्थित हुए, जिन्होंने केवल कारकुन और दुभाषिये का काम किया। गांधी जी, राजकुमार शुक्ल के साथ अकेले चम्पारण के लिए चले थे, पर देखते ही देखते वहां ब्रजकिशोर बाबू, बाबू राजेंद्र प्रसाद, आचार्य जे बी कृपलानी, मौलाना मजहरुल हक़, रामनवमी प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह, अवंतिका बाई, एंड्रूज जैसे तमाम वकील, समाजसेवी और बुद्धिजीवी देश भर से चम्पारण आने लगे। बाद में कस्तूरबाजी और महादेव देसाई भी आ गये। निलहे किसानों के साथ साथ स्वच्छता मिशन और अन्य सामाजिक कार्यक्रम भी इससे जुड़ते गये।

चंपारण में जो हुआ, वह केवल निलहे किसानों के लिए नहीं, पूरे समाज के लिए आंदोलन बन गया। लोगों ने नहाना सीखा, स्त्रियों ने बाहर निकलकर समूह में कुंए पर नहाना सीखा। बा ने महिलाओं के समूह बना रखे थे, जो अंदर घरों में घुसकर महिलाओं से मिलतीं, उन्हें जागरूक करतीं। स्वस्थ रहन-सहन के तरीके सिखातीं। घर के बाहर कच्चे कुओं की सफाई और उसका सदुपयोग बताने के लिए गांधीजी भी गांव-गांव घूमे। इस आंदोलन की मुख्य प्राप्ति यह रही कि सरकार को निलहे कानून वापस लेने पड़े और जनता को सुकून मिला। ❑

उ. प्र. सर्वोदय समाज सम्मेलन

14-15 फरवरी 2021 को दो दिवसीय उत्तर प्रदेश सर्वोदय समाज सम्मेलन वाराणसी में हो रहा है। महात्मा गांधी और उनके विचार को मानने वाले साथियों व संगठनों का यह समागम है। इस समागम में जलपुरुष डॉ.राजेन्द्र सिंह, सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष चंदन पाल, राष्ट्रीय गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष रामचन्द्र राही, सर्व सेवा संघ के पूर्व अध्यक्ष अमरनाथ भाई, अम्बरीश कुमार (पत्रकार), दीपक मालवीय, उत्तर प्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष भगवान सिंह आदि गांधीजन आ रहे हैं। इस समागम में आप सादर आमंत्रित हैं।

× × ×

युवा शिविर

सर्व सेवा संघ, वाराणसी में पाँच दिवसीय (16-20 फरवरी 2021) युवक-युवती प्रशिक्षण शिविर आयोजित है। इस शिविर में गांधीजी के अहिंसक समाज रचना के विभिन्न आयामों और सर्वोदय दर्शन पर चर्चा होगी। शिविर में अवश्य आइये।

उपर्युक्त दोनों कार्यक्रमों का आयोजन सर्व सेवा संघ द्वारा किया जायेगा।

–रामधीरज

महात्मा गांधी को चिट्ठी पहुंचे!

❑ हरिशंकर परसाई

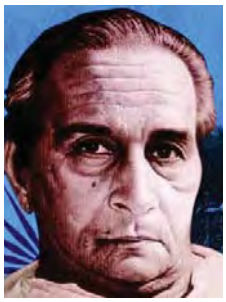

यह चिट्ठी महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी को पहुंचे. महात्माजी, मैं न संसद-सदस्य हूँ, न विधायक, न मंत्री, न नेता. इनमें से कोई कलंक मेरे ऊपर नहीं है. मुझमें कोई ऐसा राजनीतिक ऐब भी नहीं है कि आपकी जय बोलूं. मुझे कोई पद भी नहीं चाहिए कि राजघाट जाऊँ. मैंने आपकी समाधि पर शपथ भी नहीं ली.

आपका भी अब भरोसा नहीं रहा. पिछले मार्च में आपकी समाधि पर मोरारजी भाई ने भी शपथ ली थी और जगजीवन राम ने भी. मगर बाबू जी रह गए और मोरारजी प्रधानमंत्री हो गए. आखिर गुजराती ने गुजराती का साथ दिया. जिन्होंने आपकी समाधि पर शपथ ली थी, उनका दस महीने में ही 'जिंदाबाद' से 'मुर्दाबाद' हो गया. वे जनता से बचने के लिए बाथरूम में ही बिस्तर डलवाने लगे हैं. मुझे अपनी दुर्गति नहीं करानी. मैं कभी आपकी समाधि पर शपथ नहीं लूँगा. उसमें भी आप टाँग खींच सकते हैं.

आपके नाम पर सड़कें हैं- महात्मा गांधी मार्ग, गांधी पथ. इन पर हमारे नेता चलते हैं. कौन कह सकता है कि इन्होंने आपका मार्ग छोड़ दिया है. वे तो रोज़ महात्मा गांधी रोड पर चलते हैं. इधर आपको और तरह से अमर बनाने की कोशिश हो रही है. पिछली दिवाली पर दिल्ली के जनसंघी शासन ने सस्ती मोमबत्ती सप्लाई करायी थी. मोमबत्ती के पैकेट पर आपकी फोटो थी. फोटो में आप आरएसएस के ध्वज को प्रणाम कर रहे हैं. पीछे हेडगेवार खड़े हैं. एक ही कमी रह गयी. आगे पूरी हो जायेगी. अगली बार आपको हाफ पैंट पहना दिया जायेगा और भगवा टोपी पहना दी जायेगी. आप मजे में आरएसएस के स्वयंसेवक के रूप में अमर हो सकते हैं. आगे वही अमर होगा, जिसे जनसंघ करेगा.

कांग्रेसियों से आप उम्मीद मत कीजिये. यह नस्ल अब खत्म हो रही है. आगे गड़ाये जाने वाले कालपत्र में एक नमूना कांग्रेस का भी रखा जयेगा, जिससे आगे आने वाले यह जान सकें कि पृथ्वी पर एक प्राणी ऐसा भी था. गैण्डा तो अपना अस्तितव कायम रखे है, लेकिन कांग्रेसी नहीं रख सका. मोरारजी भाई भी आपके लिए कुछ नहीं कर सकेंगे. वे सत्यवादी हैं. इसलिए अब वे यह नहीं कहते कि आपको मारने वाला गोडसे आरएसएस का था.

यह सभी जानते हैं कि गोडसे फांसी पर चढ़ा, तब उसके हाथ में भगवा ध्वज था और होठों पर संघ की प्रार्थना- नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमि. पर यही बात बताने वाला गांधीवादी गाइड दामोदरन नौकरी से निकाल दिया गया. उसे आपके मोरारजी भाई ने नहीं बचाया. मोरारजी सत्य पर अटल रहते हैं. इस समय उनके लिए सत्य है प्रधानमंत्री बने रहना. इस सत्य की उन्हें रक्षा करनी है. इस सत्य की रक्षा के लिए जनसंघ का सहयोग जरूरी है. इसलिए वे यह झूठ नहीं कहेंगे कि गोडसे आरएसएस का था. वे सत्यवादी हैं.

तो महात्माजी, जो कुछ उम्मीद है, अब केवल बाला साहब देवरस से है. वे जो करेंगे, वही आपके लिए होगा. वैसे काम चालू हो गया है. गोडसे को भगत सिंह का दर्जा देने की कोशिश चल रह रही है. गोडसे ने हिंदू राष्ट्र के विरोधी गांधी को मारा था. गोडसे जब भगत सिंह की तरह राष्ट्रीय हीरो हो जायेगा, तब तीस जनवरी का क्या होगा? अभी तक यह 'गांधी निर्वाण दिवस है', आगे 'गोडसे गौरव दिवस' हो जायेगा. इस दिन कोई राजघाट नहीं जायेगा, फिर भी आपको याद जरूर किया जायेगा.

जब तीस जनवरी को गोडसे की जय-जयकार होगी, तब यह तो बताना ही पड़ेगा कि उसने कौन-सा महान कर्म किया था. बताया जायेगा कि इस दिन उस वीर ने गांधी को मार डाला था. तो आप गोडसे के बहाने याद किए जायेंगे. अभी तक गोडसे को आपके बहाने याद किया जाता था. एक महान पुरुष के हाथों मरने का कितना फयदा मिलेगा आपको? लोग पूछेंगे- यह गांधी कौन था? जवाब मिलेगा- वही, जिसे गोडसे ने मारा था.

एक संयोग और आपके लिए अच्छा है. 30 जनवरी 1977 को जनता पार्टी बनी थी. 30 जनवरी जनता पार्टी का जन्म-दिन है. अब बताइये, जन्मदिन पर कोई आपके लिए रोयेगा? वह तो खुशी का दिन होगा. आगे चलकर जनता पार्टी पूरी तरह जनसंघ हो जायेगी. तब 30 जनवरी का यह महत्त्व होगा- इस दिन परमवीर राष्ट्रभक्त गोडसे ने गांधी को मारा. इस पुण्य के प्रताप से इसी दिन जनता पार्टी का जन्म हुआ, जिसने हिंदू राष्ट्र की स्थापना की.

आप चिंता न करें, महात्माजी! हमारे मोरारजी भाई को न कभी चिंता होती है और न वे कभी तनाव अनुभव करते हैं. चिंता क्यों हो उन्हें? किसकी चिंता हो? देश की? नहीं. उन्होंने तो ऐलान कर दिया है- राम की चिड़िया, राम का खेत! खाओ री चिड़िया, भर-भर पेट! तो चिड़िया खेत खा रही है और मोरारजी को कोई चिंता, कोई तनाव नहीं है. बाकी भी ठीक चल रहा है. आप जो लाठी छोड़ गए थे, उसे चरण सिंह ने हथिया लिया है. चौधरी साहब इस लाठी को लेकर जवाहरलाल नेहरू का पीछा कर रहे हैं. जहाँ नेहरू को पा जाते हैं, एक-दो हाथ दे देते हैं. जो भी नेहरू की नीतियों की वकालत करता है, उसे चौधरी आपकी लाठी से मार देते हैं.

उस दिन चंद्रशेखर ने कहीं कह दिया कि नेहरू की उद्योगीकरण की नीति सही थी और उससे देश को बहुत फायदा हुआ है. चरण सिंह ने सुना तो नौकर से कहा- अरे लाना गांधीजी की लाठी! लाठी लेकर वे चंद्रशेखर को मारने निकल पड़े. बेचारे बचने के लिए थाने गए तो थानेदार ने कह दिया–पुलिस चौधरी साहब की है. वे अगर आपको मार रहे हैं, तो हम नहीं बचा सकते.

आप हरिजन वगैरह की चिन्ता मत कीजिये. हर साल कोटा तय रहता है कि इस साल गांधी जयंती तक इतने हरिजन मरेंगे. इस साल 'कोटा' बढ़ा दिया गया था, क्योंकि जनता पार्टी के नेताओं ने राजघाट पर शपथ ली थी.

उनकी सरकार बन गयी. उन्हें शपथ की लाज रखनी थी. इसीलिए हरिजनों को मारने का 'कोटा' बढ़ा दिया गया. खुशी है कि 'कोटे' से कुछ ज्यादा ही हरिजन मारे गए. आप बेफिक्र रहें, आपका यश किसी न किसी रुप में सुरक्षित रहेगा. ❑

गांधी जी का रास्ता परिस्थितियों से जूझने का रास्ता

❑ रामदत्त त्रिपाठी

आज की दुनिया में शांतिपूर्ण सह अस्तित्व एक बड़ी चुनौती है। ऐसा नहीं है कि केवल अलग-अलग धर्मों के लोग लड़ रहे हैं। अपितु एक ही धर्म के अंदर भी कई युद्ध हो चुके हैं और आज भी हो रहे हैं। यूरोप में ईसाई आपस में लड़े हङ्ग, पश्चिम एशिया में इस्लामी दुनिया के लोग लड़ रहे हैं। हमारे पड़ोसी देश पाकिस्तान में लड़ रहे हैं। हिंदुस्तान में भी केवल हिंदू–मुसलमान में झगड़ा नहीं है। अतीत में शैव और वैष्णव आपस में कम नहीं लड़े हैं। लेकिन बाद में धीरे-धीरे दुनिया भर में लोगों को यह एहसास हुआ कि हमारा हित एक साथ मिलकर रहने में ही है। गांधी जी ने 'हिंद स्वराज' में हिंदू मुस्लिम एकता पर मिल-जुलकर रहने पर बहुत ज़ोर दिया था। गांधी जी जब राजकोट में स्कूल में पढ़ते थे, तभी से उनकी मुस्लिम युवकों से मित्रता थी। दक्षिण अफ्रीका में हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, गुजराती, तमिल सबके साथ मिलकर उन्होंने काम किया।इसलिए उनकी सोच सबको साथ लेकर चलने की थी।

'हिंद स्वराज' में एक अध्याय है 'हिंदू और मुसलमान', जिसमें उन्होंने लिखा है कि, 'एक राष्ट्र होकर रहने वाले लोग एक दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते हैं, अगर देते हैं तो समझना चाहिए कि वह एक राष्ट्र होने लायक नहीं हैं। अगर हिंदू मानें कि सारा हिंदुस्तान, सिर्फ हिंदुओं से भरा होना चाहिए, तो यह एक निरा सपना है। मुसलमान अगर ऐसा मानें कि उसमें सिर्फ मुसलमान ही रहें, तो उसे भी सपना ही समझिए।फिर भी हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई जो इस देश को अपना वतन मानकर बस चुके हैं, एक देशी, एक मुल्की हैं, वे देशी भाई हैं ; और उन्हें एक दूसरे के स्वार्थ के लिए भी एक होकर रहना पड़ेगा।

हिंदू और मुसलमान दोनों को समझाते हुए गांधी जी ने हिंद स्वराज में लिखा, 'बहुतेरे हिंदुओं और मुसलमानों के बाप दादे एक थे, हमारे अंदर एक ही ख़ून है।क्या धर्म बदला इसलिए आपस में हम दुश्मन हो गए? धर्म तो एक ही जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं। हम दोनों अलग-अलग रास्ते लें, इसमें क्या हो गया? उसमें लड़ाई काहे की?'

राजनीति और सत्ता जन सेवा का माध्यम है। लेकिन आज सत्ता हासिल करना ही लक्ष्य हो गया है, जिसके लिए सिद्धांतों की बलि देकर नेता तरह-तरह के समझौते करते हैं। आज चुनावी राजनीति बहुमत हासिल करने के लिए अलगाव और विभेद पैदा कर रही है। कुछ दल मुस्लिम धार्मिक नेताओं का सहारा ले रहे हैं, तो कुछ हिंदू धार्मिक साधू संतों का।

मानव जाति के मध्य जो झगड़े होते हैं, वह भय, असुरक्षा और लालच के कारण होते हैं। पहले तो अल्पसंख्यकों को ही असुरक्षा का खतरा होता था, किन्तु आज तो बहुसंख्यक को भी खतरा लग रहा है। आज सुनियोजित तरीके से बहुसंख्यक लोगों के मध्य असुरक्षा और हीन भावना पैदा की जा रही है। उनको कहा जा रहा है कि तुम्हारे मंदिर नष्ट हो जायेंगे, तुम्हारी पूजा कम हो जायेगी, तुम्हारी आबादी कम हो जायेगी। वे कहते हैं कि साहब हिंदुस्तान में तो हिन्दू होना गुनाह है। इस तरह भड़काते हैं लोगों को। यह गांधी का रास्ता नहीं है.

आज गोरक्षा का एक बहुत बड़ा सवाल खड़ा हो गया है। गांधी जी ने 'हिंद स्वराज' में भी गौ रक्षा पर टिप्पणी की है। कितनी दूर दृष्टि थी उनकी। गांधीजी का जो रचनात्मक कार्यक्रम था, उसमें गौ सेवा एक बड़ा कार्यक्रम था। गांधी जी मानते थे कि हिंदुस्तान खेती प्रधान देश है, इसलिए गाय कई तरह से उपयोगी जानवर है। और पूज्य है।

हिंद स्वराज में उन्होंने कहा, 'जैसे मैं गाय को पूजता हूँ, वैसे ही मैं मनुष्य को पूजता हूँ। जैसे गाय उपयोगी है, वैसे ही मनुष्य भी– फिर चाहे वह मुसलमान हो या हिंदू। तब क्या गाय को बचाने के लिए मैं मुसलमान से लड़ूंगा? क्या मैं उसे मारूंगा? ऐसा करने से मैं मुसलमान का और गाय का भी दुश्मन बनूंगा। इसलिए मैं कहूंगा कि गाय की रक्षा करने का एक ही उपाय है कि हमें अपने मुसलमान भाई के सामने हाथ जोड़ना चाहिए और उसे देश की ख़ातिर गाय को बचाने के लिए समझाना चाहिए और अगर वह न समझे तो मुझे गाय को मरने देना चाहिए, क्योंकि वह मेरे वश की बात नहीं है। अगर मुझे गाय पर अत्यंत दया आती हो तो हमें अपनी जान दे देनी चाहिए लेकिन मुसलमान की जान नहीं लेनी चाहिए। यही धार्मिक कानून है, ऐसा मैं मानता हूँ।

जान लेने का हक़ नहीं

समझाने के लिहाज़ से उन्होंने आगे फिर लिखा, 'मेरा भाई गाय को मारने दौड़े तो मैं उसके साथ कैसा बर्ताव करूँगा? उसे मारूँगा या उसके पैरों में पड़ूँगा? अगर आप कहेंगे कि मुझे उसके पाँव पड़ने चाहिए, तो मुझे मुसलमान भाई के भी पाँव पड़ना चाहिए।'

गांधी का नज़रिया बहुत साफ़ था. किंतु आज क्या हो रहा है? अलवर और दादरी में जो हुआ, क्या वह सही हुआ? केवल गांधी विचार का गुणगान करने से काम नहीं बनेगा, गांधी चाहते तो चंपारण पर शोध करके पीएचडी की उपाधि पा सकते थे; डी.लिट. पा जाते किंतु उससे क्या होता? उससे तो देश नहीं आजाद होता और न ही उससे समस्या हल होती।

गांधी इसलिए गांधी हैं

गांधी इसलिए गांधी हैं कि अपनी जवानी से लेकर (24 वर्ष के थे जब अफ्रीका में संघर्ष शुरू किया) बुढ़ापे तक अपने उद्देश्य के लिए संघर्ष किया। लगभग 80 वर्ष का वह एक बूढा आदमी, जो आजादी का नायक होकर भी जश्न के लिए दिल्ली में न रहकर, हिंदू मुस्लिम सामंजस्य के लिए बिहार, कलकत्ता और नोआखाली जाता है। गांव-गांव जाता है, पैदल चलता है, चप्पल उतारकर कहता है कि मैं जिन

लोगों के यहाँ जा रहा हूँ, वे घर नहीं, मंदिर हैं। चप्पल भी उतार देता है, बावजूद इसके कि रास्ते में कंकड़ हैं, काँटे हैं और कुछ लोगों ने जानबूझकर काँच के टुकड़े भी बिछाए हैं। वे हिंदू और मुस्लिम दोनों से कितना विरोध झेल रहे थे, मगर कर्तव्य पथ से पीछे नहीं हटे। उनकी जान को भी ख़तरा था।त्याग और संघर्ष का चरम है यह।

गांधी जी संघर्ष में कभी हताश नहीं हुए। आखिरी दम तक हार नहीं मानी। दिल्ली में उपवास के बाद पाकिस्तान जाने की भी तैयारी कर रहे थे। वहाँ के लोगों को समझाने के लिए जाना चाहते थे कि अल्पसंख्यकों के साथ मिल-जुलकर रहें। मगर दोनों तरफ़ कुछ लोग थे, जो ऐसा नहीं चाहते थे। गांधी जी का जो रास्ता है, वह कर्म योग का रास्ता है, परिस्थितियों से जूझने का रास्ता है। आज की समस्याओं से निपटने के लिए भी वही रास्ता है।

आज भी वही समस्या है धार्मिक, साम्प्रदायिक संघर्ष की, विद्वेष की। गांधी ने विभिन्न धर्मों के बीच एक समान तत्व निकाला कि ईश्वर एक है, बीच का मार्ग निकाला कि सब धर्मों को बराबर सम्मान दो। उसके बजाय आज कई जगह लोग अतिवाद या चरमपंथ के रास्ते पर हैं। यह अतिवाद और चरमपंथ पूरी दुनिया के लिए बड़ा खतरा है। इससे सामाजिक शांति और स्थिरता भंग हो जाती है। जहाँ शांति और सामाजिक सद्भाव भंग होता है, वहाँ देश भी अस्थिर हो जाता है।

जब भरोसा टूटता है तो

भारत में कुछ लोग हिंदू राष्ट्र की बात करते हैं। मैंने नेपाल में देखा, वह तो हिन्दू राष्ट्र है। नेपाल में बहुत गरीब लोग हैं। यूपी और बिहार से मिला जुला इलाका है। माओवादियों और सेना के बीच सशस्त्र संघर्ष था।समाचार संकलन के लिए मैं उनके बीच में घूमता था। मैं यही सोचता था कि गरीबी उनके यहाँ भी है और हमारे यहाँ भी है। तो ये लोग क्यों इतनी बड़ी तादाद में बंदूक उठाए हुए हैं, क्योंकि उनको भरोसा नहीं था वहां स्टेट पर, राजा पर।

भारत में लोगों को अभी भरोसा है कि हमारे बीच के लोग चुनकर जा रहे हैं शासन चलाने के लिए, डेमोक्रेसी है और इसी से उनके जीवन में बदलाव आएगा, शोषण और ग़ैर-बराबरी ख़त्म होगी। लेकिन जब भरोसा टूटता है तो क्या होता है, नेपाल में हिन्दू राष्ट्र दो मिनट में ख़त्म हो गया। वह राजा जिसको विष्णु का अवतार कहते थे, दो मिनट में उसको उतारकर फेंक दिया ।

हिन्दू राष्ट्र कहने से भारत राष्ट्र का निर्माण नहीं होगा।हमें सामाजिक शांति लानी पड़ेगी, लोगों का जीवन ख़ुशहाल बनाना होगा। ग़ैर-बराबरी ख़त्म या कम करनी होगी।यही बात मुस्लिम उग्रवादियों पर भी लागू होती है।

गांधी सबसे बड़े योगी थे

आज योग की बात बहुत होती है, लेकिन योग में विभेद की गुंजाइश कहाँ है? योगी में किसी के प्रति वैर भाव नहीं होता। गांधी सबसे बड़े योगी थे, महायोगी।

पतंजलि योग दर्शन में योग का उद्देश्य चित्त की वृत्तियों का निषेध है, यानी इंद्रियों को वश में कर चेतन आत्मा से जुड़ने का ज्ञान दिया गया है। यह मनुष्य के शरीर, इंद्रियों और मन को अनुशासित करने की साधना है। समदर्शी होने की साधना है। निर्वैर होने की साधना है। योग के जो आठ अंग बताए गये हैं, उनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। इसमें आसन और प्राणायाम से पहले यम और नियम पर ज़ोर है।

आप देखेंगे कि गांधी जी ने सत्य और अहिंसा का जो आग्रह रखा, उसका जिक्र योग दर्शन में भी है। यह योग का एक अनिवार्य तत्व है। उसमें कहा गया है, जो अहिंसा की सिद्धि कर लेता है, उस योगी में किसी के प्रति बैर भाव नहीं होता है।

जब योगी में सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है, यानी वह जीवन में सत्य का पालन करता है तो उसके मुंह से निकले वचन कभी निष्फल नहीं होते, वह जो कहता है वह हो जाता है।

सत्य और अहिंसा सामाजिक सद्गुण

यह बात नहीं है कि इन गुणों को उन्होंने केवल अपने निजी जीवन में लिया। गांधी जी ने उसको सामाजिक सद्गुण में परिवर्तित किया वह केवल अंग्रेज़ों को नहीं हटाना चाहते थे, लगे हाथ भारत में नया समाज बनाना चाहते थे।

गांधी जी भारत में ऐसा नागरिक समाज बनाना चाहते थे, जो अपनी पुरानी धार्मिक, साम्प्रदायिक चेतना से ऊपर उठकर सामंजस्य से रहना सीखें। पुरानी सोच को बदले बिना ये झगड़े समाप्त नहीं हो सकते।

उल्टी गंगा बह रही है

काफ़ी दिनों तक दुनिया सही दिशा में जा रही थी।लोग एक दूसरे के साथ रहना और दूसरी संस्कृतियों का आदर करना सीख रहे थे, पर कुछ दिनों से अचानक फिर उल्टी गंगा बह रही है। अमेरिका और इंग्लैंड आदि में आज क्या हो रहा है? आज समूची दुनिया के लिए यह एक बड़ी चुनौती है कि कैसे अलग-अलग रंग, रूप, भाषा, बोली और संस्कृतियों के लोग आपस में सद्भावना के साथ मिल-जुलकर रहें।

गांधी विचार इसके लिए एक रास्ता दिखाता है।मगर इस विचार को संग्रहालयों और पुस्तकालयों से निकालकर समाज में ले जाने की ज़रूरत है। अंत में दो और सवाल उठाना चाहता हूँ कि अगर किसी समाज में हिंसा, झूठ, शोषण और गैर बराबरी है तो क्या वहाँ सह-अस्तित्व संभव है?

गाँव में हम जाते हैं तो पाते हैं कि विभिन्न जातियों का यह टोला अलग है, वह टोला अलग है। जहाँ ऊँच-नीच का भाव है, क्या वहाँ सह-अस्तित्व संभव है? सह अस्तित्व के लिए कहीं न कहीं शोषण, हिंसा और गैर बराबरी को ख़त्म करना होगा।

समाज में न्याय होगा, तभी सह-अस्तित्व

सह-अस्तित्व केवल मानव-मानव के बीच नहीं चाहिए। आज कितना बड़ा पर्यावरण का संकट है! मुनाफ़े के लिए उद्योग वाले शासन से मिलकर प्रकृति को नष्ट कर रहे हैं। तमाम जंगल नष्ट हो रहे हैं, पहाड़ और नदियाँ नष्ट हो रही हैं। वायु और आकाश के साथ- साथ प्रदूषण से समुद्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जंगली जीव मानव आबादी की तरफ़ भाग रहे हैं और आपस में संघर्ष हो रहा है। इसलिए प्रकृति और अन्य जीवों के साथ भी सह-अस्तित्व पर हमें सोचना होगा और उसके अनुसार नीतियाँ बनानी होंगी। ❑

हिंदुस्तान के वास्तविक राजा किसान को गुलाम बना दिया गया है-गांधी

❑ राजू पांडेय

जीवन में अनेक ऐसे अवसर आए जब गांधी जी को अपना परिचय देने की आवश्यकता पड़ी और हर बार उन्होंने स्वयं की पहचान किसान ही बताई। 1922 में राजद्रोह के मुकदमे का सामना कर रहे गांधी अहमदाबाद में एक विशेष अदालत के सामने स्वयं का परिचय एक किसान और बुनकर के रूप में देते हैं। पुनः नवंबर 1929 में अहमदाबाद में नवजीवन ट्रस्ट के लिए दिए गए घोषणापत्र के अनुसार भी गांधी स्वयं को पेशे से किसान और बुनकर बताते हैं। बहुत बाद में सितंबर 1945 में गांधी जी भंडारकर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च पूना की यात्रा करते हैं। उनके साथ सरदार वल्लभ भाई पटेल और राजकुमारी अमृत कौर भी हैं। पुनः संस्थान की विजिटर्स बुक में गांधी अपना परिचय एक किसान के रूप में देते हैं। अनेक विद्वानों ने सेवाग्राम आगमन के पश्चात पहली प्रार्थना सभा में ही गांधी जी को यह कहते उद्धृत किया है कि हमारी दृष्टि देहली नहीं, देहात की ओर होनी चाहिए। देहात हमारा कल्प वृक्ष है।

गांधी जी की दृष्टि में किसान और हिंदुस्तान एक दूसरे के पर्याय हैं। अहिंसा और निर्भयता किसान का मूल स्वभाव है और शोषण तथा दमन के विरुद्ध सत्याग्रह उसका बुनियादी अधिकार। हिन्द स्वराज (1909) में वे लिखते हैं–आपके विचार में हिंदुस्तान से आशय कुछ राजाओं से है, किंतु मेरी दृष्टि में हिंदुस्तान का मतलब वे लाखों लाख किसान हैं, जिन पर इन राजाओं का और आपका अस्तित्व टिका हुआ है। —मैं आपसे विश्वासपूर्वक कहता हूं कि खेतों में हमारे किसान आज भी निर्भय होकर सोते हैं। जबकि अंग्रेज और आप वहां सोने के लिए आनाकानी करेंगे।—किसान किसी की तलवार के बस न तो कभी हुए हैं और न होंगे। वे तलवार चलाना नहीं जानते और न ही वे किसी की तलवार से भय खाते हैं। वे मौत को हमेशा अपना तकिया बनाकर सोने वाली महान प्रजा हैं। उन्होंने मृत्यु का भय छोड़ दिया है।

गांधी जी किसानों के शोषण को देश की सबसे गंभीर समस्या मानते थे और उन्होंने बारंबार अपने लेखों और भाषणों में इसे देश की स्वतंत्रता के मार्ग में बाधक बताया है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर 6 फरवरी 1916 को दिए गए ऐतिहासिक भाषण में गांधी जी कहते हैं, 'जब कहीं मैं कोई आलीशान इमारत खड़ी हुई देखता हूं; तब मन में आता है कि हाय, यह सारा रुपया किसानों से ऐंठा गया है। जब तक हम अपने किसानों को लूटते रहेंगे या औरों को लूटने देंगे, तब तक स्वराज्य की हमारी तड़पन सच्ची नहीं कही जा सकती है। देश का उद्धार किसान ही कर सकता है।

आज से लगभग 77 वर्ष पूर्व गांधी यह उद्घोष करते हैं कि जमीन उसी की होनी चाहिए, जो उस पर खेती करता है, न कि किसी जमींदार की। वे किसानों को जमींदारों और पूंजीपतियों के शोषण से बचने के लिए सहकारिता की ओर उन्मुख होने का परामर्श देते हैं। वे खेतिहर मजदूरों के हकों की चर्चा करते हैं। आज तो भूमिहीन किसान और कृषि मजदूर चर्चा से ही बाहर हैं और सहकारिता को खारिज करने की हड़बड़ी सभी को है। गांधी जी के अनुसार, किसानों का- फिर वे भूमिहीन मजदूर हों या मेहनत करने वाले जमीन मालिक हों– स्थान पहला है। उनके परिश्रम से ही पृथ्वी फलप्रसू और समृद्ध हुई है और इसलिए सच कहा जाए तो जमीन उनकी ही है या होनी चाहिए, जमीन से दूर रहने वाले जमींदारों की नहीं। लेकिन अहिंसक पद्धति में मजदूर-किसान इन जमींदारों से उनकी जमीन बलपूर्वक नहीं छीन सकता।

आज हम देख रहे हैं कि केंद्र सरकार द्वारा जबरन थोपे गए तीन कृषि कानूनों के विरुद्ध देश के किसान आंदोलित हैं। किसानों को मिलते जन समर्थन और आंदोलन के देशव्यापी स्वरूप के कारण केंद्र सरकार भयभीत है और वह साम-दाम-दंड-भेद किसी भी विधि से किसानों को परास्त करना चाहती है। गांधी जी ने बहुत पहले ही हमें चेताया था कि यदि किसानों की उपेक्षा, शोषण एवं दमन जारी रहा तो हालात विस्फोटक बन सकते हैं। उन्होंने लिखा–यदि भारतीय समाज को शांतिपूर्ण मार्ग पर सच्ची प्रगति करनी है तो धनिक वर्ग को निश्चित रूप से स्वीकार कर लेना होगा कि किसान के पास भी वैसी ही आत्मा है, जैसी उनके पास है और अपनी दौलत के कारण वे गरीब से श्रेष्ठ नहीं हैं।

गांधी जी ने स्वयं किसान आंदोलनों का सफल नेतृत्व किया। उनकी प्रेरणा से अनेक किसान आंदोलन प्रारंभ हुए और उनके मार्गदर्शन में कामयाब भी हुए। अहिंसा और सत्याग्रह इन किसान आंदोलनों के मूलाधार थे। अप्रैल 1917 का चंपारण सत्याग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि आज की परिस्थितियों से यह बहुत अधिक समानता दर्शाता है। चंपारण के गरीब किसानों, भूमिहीन कृषकों एवं कृषि मजदूरों को खाद्यान्न के बजाय नकदी फसल लेने के लिए बाध्य किया जाता था। चंपारण के किसानों का शोषण बहुस्तरीय था। नील की खेती के लिए बाध्य करने के तीन क्रूर तरीके और छियालीस प्रकार के अवैध कर – उस समय लगभग 21900 एकड़ कृषि भूमि उससे प्रभावित थी। गांधी जी के मार्गदर्शन में 2900 गाँवों के तेरह हजार किसानों की समस्याओं को लिपिबद्ध किया गया।

गांधी जी के वैज्ञानिक, अहिंसक आंदोलन को विफल करने हेतु तुरकौलिया के ओल्हा कारखाने में अग्निकांड किया गया। किन्तु गांधी जी का संकल्प डिगा नहीं, बल्कि दृढ़ ही हुआ। तब बिहार के अंग्रेज डिप्टी गवर्नर एडवर्ड गेट ने चंपारण एग्रेरियन कमिटी का गठन किया। गांधी जी इसके सदस्य थे। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर तीन कठिया प्रथा को समाप्त किया गया, लगान की दरें कम की गईं और कुछ मुआवजा भी किसानों को मिला। यह सत्याग्रह का देश में प्रथम सफल प्रयोग था। उस काल के अंग्रेज शासकों

की भांति आज की नवउपनिवेशवादी शक्तियां किसानों की भूमि पर कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग द्वारा अपना नियंत्रण कर उनसे अपनी मनचाही फसलों की खेती कराना चाहती हैं। गांधी जी के अहिंसक आंदोलन को नाकामयाब करने के लिए हिंसा पर आधारित कुटिल प्रयास किए गए थे।26 जनवरी 2021 को भी कुछ वैसे ही षड्यंत्र रचे गए। किंतु गांधी जी ने धैर्य न खोया, आंदोलन का अहिंसक और पारदर्शी स्वरूप बरकरार रहा। सत्ता के सारे षड्यंत्र विफल हुए और किसानों की जीत हुई।

गांधी जी की प्रेरणा से भी अनेक सत्याग्रह आंदोलन हुए। यह आंदोलन किसानों की समस्याओं से संबंधित थे। सरदार पटेल ने इन आंदोलनों का सफल संचालन किया था। खेड़ा(1918), बोरसद(1922-23) और बारडोली(1928) जैसे आंदोलनों की सफलता का रहस्य गांधी जी के अनुसार किसानों का राजनीतिक उपयोग करने की घातक प्रवृत्ति से पूरी तरह दूरी बनाए रखना था। गांधी जी के अनुसार यह आंदोलन इसलिए सफल रहे क्योंकि ये किसानों की बुनियादी और अनुभूत दैनंदिन समस्याओं पर अपने को केंद्रित रख सके और इनमें राजनीति को प्रवेश का अवसर नहीं मिल पाया। पुनः गांधी जी इन आंदोलनों के अहिंसक स्वरूप पर बल देते हैं। उनके अनुसार जिस दिन किसान अपनी अहिंसक शक्ति को पहचान लेंगे, उस दिन दुनिया की कोई भी ताकत उन्हें रोक नहीं सकती। बारडोली सत्याग्रह के संबंध में गांधी जी ने कहा–'किसान जो धरती की सेवा करता है, वही तो सच्चा पृथ्वीपति है। उसे जमींदार या सरकार से क्यों डरना है।'

वर्तमान किसान आंदोलन के नेतृत्व को गांधी जी की यह सीखें बार बार स्मरण करनी चाहिए। आंदोलन का स्वरूप सदैव अहिंसक रहे। आंदोलन पूर्णतः अराजनीतिक हो। आंदोलनकारियों का फोकस पूरी तरह किसानों की समस्याओं पर बना रहे। सबसे बढ़कर किसानों को अपनी अहिंसक शक्ति पर विश्वास हो तो सफलता अवश्य मिलेगी।

किसानों का मार्ग दुरूह है, संघर्ष लंबा चलेगा किंतु गांधी जी ने स्वतन्त्रता पूर्व जो मंत्र दिया था, उसका अक्षर अक्षर आज प्रासंगिक है–'अगर विधानसभाएं किसानों के हितों की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध होती हैं तो किसानों के पास सविनय अवज्ञा और असहयोग का अचूक इलाज तो हमेशा होगा ही। लेकिन अंत में अन्याय या दमन से जो चीज प्रजा की रक्षा करती है, वह कागजों पर लिखे जाने वाले कानून, वीरता पूर्ण शब्द या जोशीले भाषण नहीं है, बल्कि अहिंसक संगठन, अनुशासन और बलिदान से पैदा होने वाली ताकत है।'

एक प्रश्न किसानों की सत्ता में भागीदारी का भी है। इस संबंध में गांधी जी ने अपनी राय बड़ी बेबाकी और साफगोई से रखी थी। प्रसिद्ध किसान नेता एन जी रंगा को किसानों की समस्याओं पर दिए गए विस्तृत साक्षात्कार में गांधी जी ने कहा–मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि हमें लोकतांत्रिक स्वराज्य हासिल हो – और यदि हमने अपनी स्वतंत्रता अहिंसा से पाई हो–तो जरूर ऐसा ही होगा। उसमें किसानों के पास राजनीतिक सत्ता के साथ हर किस्म की सत्ता होनी चाहिए। किसानों के हाथों में सत्ता के सूत्र सौंपने की गांधी जी की उत्कट अभिलाषा जीवन के अंत तक बनी रही। 29 जनवरी 1948 को उन्होंने प्रार्थना सभा के दौरान कहा–'मेरा बस चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा बड़ा वजीर किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योंकि यहां का राजा किसान है। मुझे बाल्यकाल से एक कविता सिखाई गई– 'हे किसान, तू बादशाह है।' किसान भूमि से पैदा न करे तो हम क्या खाएंगे? हिंदुस्तान का वास्तविक राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे हैं। आज किसान क्या करे? एमए बने? बीए बने? ऐसा किया तो किसान मिट जाएगा। पीछे वह कुदाली नहीं चलाएगा। किसान प्रधान बने, तो हिंदुस्तान की शक्ल बदल जाएगी। आज जो सड़ा पड़ा है, वह नहीं रहेगा।'

किसानों को स्वतंत्रता के बाद सत्ता में वैसी केंद्रीय भूमिका नहीं मिल पायी, जैसी गांधी जी की इच्छा थी। बल्कि सत्ता में किसानों की भागीदारी में उत्तरोत्तर कमी ही आई। जो किसान सत्ता पर काबिज भी हुए, उनका व्यवहार किसानों जैसा खालिस और देसी नहीं रहा। सत्ता की चकाचौंध ने उन्हें दिग्भ्रमित किया। वे गांवों और खेती की उपेक्षा करते और शहरों और उद्योगों की वकालत करते नजर आए। सत्ता और अर्थव्यवस्था के विकेंद्रीकरण के महत्व को वे पहचान न पाए। यदि सत्ता में किसानों की भागीदारी नगण्य है और सत्ता का आचरण किसान विरोधी है तो इसके लिए मतदाता के रूप में किसानों का व्यवहार भी कम उत्तरदायी नहीं है। किसान मतदाता के रूप में जातीय, धार्मिक और दलीय प्रतिबद्धता के आधार पर अपना प्रतिनिधि चुनते रहे हैं।

आज गांधी जी का स्मरण और उनका पुनर्पाठ इसलिए भी आवश्यक है, क्योंकि किसान आंदोलन को कमजोर करने के लिए जो रणनीति अपनाई जा रही है, वह दरअसल गांधी के सपनों के भारत को खंडित करने वाली है। यह घृणा और विभाजन की रणनीति है। जाति-धर्म और संप्रदाय की संकीर्णता को इस किसान आंदोलन ने गौण बना दिया था। किंतु अब इसे धार्मिक पहचान वाले पृथकतावादी आंदोलन के रूप में रिड्यूस किया जा रहा है। विभाजन, संदेह और घृणा के नैरेटिव के अनंत शेड्स देखने में आ रहे हैं। पंजाब-हरियाणा के किसान बनाम सारे देश के किसान का नैरेटिव इस आंदोलन के राष्ट्रीय स्वरूप को महत्वहीन करने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

सम्पन्न और बड़े किसान बनाम छोटे और मझोले गरीब किसान का विचार इसीलिए विमर्श में डाला गया है, जिससे इस आंदोलन से बड़ी आशा लगाए करोड़ों किसानों के मन में संदेह पैदा हो। ईमानदार और जिम्मेदार मध्यम वर्ग बनाम अराजक और अनपढ़ किसान की चर्चा इसलिए की जा रही है कि उदारीकरण और निजीकरण के आघातों की पीड़ा भूलकर मध्यम वर्ग का किसान विरोध में लग जाए। हिंदू-मुसलमान और हिंदू-सिख तथा राष्ट्रभक्त-देशद्रोही जैसे पुराने विभाजनकारी फॉर्मूले भी धीरे धीरे अपनी जगह बना रहे हैं। देशवासी एक दूसरे को शत्रु मानकर आपस में संघर्ष कर रहे हैं। यह गांधी का भारत तो नहीं है। गांधी अब नहीं हैं, किंतु उनकी सीखें हमारे पास हैं। यदि हम अहिंसा, सत्याग्रह,त्याग, बलिदान, प्रेम, करुणा और सहिष्णुता पर अपनी आस्था बनाए रख सके तो देश को हर संकट से मुक्ति दिला सकते हैं। ❑

प्रेरक प्रसंग

❑ चित्रा वर्मा

बचपन से अहिंसक नीति

एक दिन उनके बड़े भाई ने खेल-खेल में उन्हें पीट दिया। गांधीजी को हिंसा से नफरत थी। वे रोते-रोते माँ के पास गए ओर बोले, 'माँ, मुझे बड़े भैया ने मारा है।' इसके बाद वे फिर रोने लगे। गांधीजी को रोते हुए देखकर पुतलीबाई को बड़े बेटे पर गुस्सा आया। वे मोहनदास से बोलीं, 'अगर बड़े भाई ने तुझे मारा है तो तुने उसे क्यों नहीं मारा? माँ का यह जवाब सुनकर रोते-रोते बालक मोहनदास चुप हो गया और कुछ देर तक सोचता रहा। फिर वह माँ की ओर देखकर बोला, 'माँ तुम मुझे बड़े भैया को मारने को कहती हो? मैं उसे उलटा क्यों मारूँ? आपको मारने वाले को रोकना चाहिए, न कि मुझे यह सिखाना चाहिए कि मैं भी उसे मारूँ!' मोहनदास की इस बात को सुनकर पुतलीबाई दंग रह गईं।

× × ×

गिरमिटिया वेश

गांधी ट्रेन से डरबन को रवाना हुए। जैसे ही वे प्लेटफार्म पर उतरे, उन पर फूलों से वर्षा की गई और उनके चारों तरफ भारतीय जमा हो गए। वहां से उन्हें एक खुली बग्घी में ले जाया गया, जिसे अतीव उत्साह के साथ नौजवानों ने सड़कों पर खींचा। यह अफ्रीका में उनके पहले घर की तरफ विजय भरी पुनर्वापसी थी। लेकिन यह थोड़ा उदासी भरा भी था। जेल में गांधी ने अपना सिर मुंड़ा लिया था और सफेद वस्त्र पहनने का निर्णय ले लिया था। उनके पैर नंगे थे। डरबन रेसकोर्स में 5000 लोगों की सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि जब उन्होंने भारतीय हड़तालियों पर पुलिसिया गोलीबारी की खबर सुनी तो उन्होंने अपना वस्त्र बदल लिया। जिन गोलियों ने उनके देशवासियों को छलनी किया है, उसने उनके

दिल को भी छलनी किया है। इसलिए अब से वे एक गिरमिटिया मजदूर की तरह ही कपड़े पहनेंगे।

× × ×

दक्षिण अफ्रीका के दिनः एक वार्तालाप

'क्या सोचते हो, गांधी?'

'किस बारे में?'

'इस टुकड़े के बारे में।'

'आओ, अन्दर चलकर देखें।' गांधी दो-ढाई घंटे तक वहीं घूमते रहे। साथ-साथ सोचते भी रहे कि फिनिक्स का वह टुकड़ा, जो एक सौ एकड़ है, एक हजार पौण्ड में खरीदा था। यह तो ग्यारह सौ एकड़ है। ग्यारह गुना बड़ा। उससे अधिक उपजाऊ, बहुत कुछ चौरस भी। कुएँ भी दो। जल के अन्य स्रोत भी। सारा हरा-भरा स्थान। स्टेशन के पास...इतना पैसा कहाँ से लाएंगे?

'क्या सोच रहे हैं, गांधी?'

'क्या सोचें, केलनबैक! मैं स्वप्न देख रहा हूँ।'

'सर्वोदयी परिवार की यहाँ व्यवस्था कैसी रहेगी?'

'उसके लिए पैसा भी चाहिए, केलनबैक?'

'जगह तो पसन्द है?'

'बेहद पसन्द।'

'तो आज से, इसी वक्त से यह ग्यारह सौ एकड़ भूमि आपकी।'

'क्या कहते हो केलनबैक?'

'यह जमीन मेरी है। आज से आपकी हुई।'

'मेरी!'

'हाँ! आपकी! सर्वोदयी योजना के नाम पर यह जमीन मैं दान करता हूँ। ईश्वर आपका स्वप्न शीघ्र साकार करे।'

× × ×

सत्य के लिए संघर्ष

गांधी ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा, 'भाइयों, असली परीक्षा का समय आ गया है। सरकार अपने वायदे से मुकर गई है। इस कारण हमें नए परवानों की होली जलानी है। अभी तक दो हजार तीन सौ पाँच परवाने आ चुके हैं। कोई और भाई भी परवाने लाए हों, तो वे सौंप दें।'

इसी समय मंच पर पठान मीर आलम अपना असल परवाना हाथ में लिए आ पहुँचा। उसने कहा, 'मुझसे दोस्तों, बड़ी गलती हुई है। मैं आप सबके सामने गांधी जी के चरण छूकर मुआफी माँगता हूँ और यह असल परवाना इसी होली में दफनाने के लिए उन्हें सौंपता हूँ।' सभा का दृश्य ही बदल गया। जब पठान मीर आलम ने गांधी के चरण छुए, तब उसकी आँखों में आँसू थे।

अब तक मंच पर रखी मेज पर कड़ाही आ चुकी थी। गांधी ने परवानों का बण्डल खोला। सारे परवाने उस कड़ाही में बिछाए। फिर उस पर घासलेट छिड़ककर उसे माचिस की तीली दिखलाई नहीं कि परवानों ने लपट पकड़ ली। परवाने जल उठे। इसी समय और परवाने भी उस आग में डाले जाने लगे। चारों ओर खुशी का आलम था। जोरदार तालियों से स्वागत किया जा रहा था।

जनरल स्मट्स के मंसूबों पर पानी फिर गया। आग की लपटें उसके दिलोदिमाग को जला रही थीं। उसने कल्पना में भी नहीं सोचा था कि जिस आदमी को मुट्ठी में लेकर अपना उल्लू सीधा किया था, उसकी नेतागिरी की साख को रौंदने का प्रयत्न किया था और जिसके कारण उसी के लोग उसके खिलाफ हुए थे, वह फिर से उन लोगों का अधिक विश्वसनीय नेता बनकर उभरेगा। ❑

गांधी जी, आनंद भवन और इलाहाबाद की यादें

❑ डॉ. सरिता

अंग्रेजी राज के खिलाफ स्वतन्त्रता संग्राम की बहुसंख्यक निशानियां आज भी इलाहाबाद की हर एक गली व गांव में देखने को मिलेंगी, क्योंकि, इलाहाबाद आजादी की लड़ाई के अनेक वीर सपूतों की जन्मस्थली एवं कर्मस्थली है और शायद यही वजह थी कि स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान महात्मा गांधी कई बार इलाहाबाद आये। विश्वविद्यालय के प्रोफसरों से लेकर किसानों तक को स्वराज की प्राप्ति के लिए आन्दोलित किया। गांधी ने आन्दोलन में भाग लेने से पहले देश का दौरा किया था। इसके बाद वह आजादी की लड़ाई में इलाहाबाद की भूमिका को समझ सके। महात्मा गांधी के कई बार इलाहाबाद आने से आजादी के लिए चल रहे संघर्ष पर भी बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। यहां अधिकांश स्वतंत्रता सेनानी गांधी के विचार पथ पर चल पड़े। आजादी के आन्दोलन में गांधी के सत्य, अहिंसा के विचार को सबसे बड़ा हथियार मानने वालों की तादाद इलाहाबाद में बहुत अधिक थी।

संगम की धरती पर पहला कदम

वास्तव में संगम नगरी इलाहाबाद की माटी पर मोहन दास करमचन्द गांधी का कदम रखना भविष्य में इतिहास गढ़ने का संकेत था। 5 जुलाई 1896 को गांधी जी रेलगाड़ी से राजकोट से कलकत्ता जा रहे थे। बीच रास्ते में अचानक उनकी तबियत खराब हो गई। गाड़ी 11 बजे इलाहाबाद स्टेशन पर पहुंची। दरअसल गाड़ी यहां 45 मिनट खड़ी होती थी, इस बीच उन्होंने दवा लेने की सोची। दवा लेकर वापस आते, तब तक गाड़ी छूट चुकी थी। इलाहाबाद में उन्होंने समय का सदुपयोग किया और 'पायनियर' प्रेस चले गये। गांधी ने तत्कालीन सम्पादक मि0 चेज़नी से प्रवासी भारतीयों के प्रति गोरों के अमानवीय तथा विषम व्यवहार के बारे में बताया। मि0चेज़नी ने गांधी जी की पूरी बात सुनी और लेख छापने का आश्वासन दिया।

गांधी ने इसी शहर में ग्रीन पेपर छपवाने का निश्चय किया। 'दक्षिण अफ्रीका में भारतीय मजदूरों पर होने वाली ज्यादतियों और गोरी सरकार की दमनात्मक नीतियों के सन्दर्भ में गांधी द्वारा एक ग्रीन पेपर भारत में छप चुका था। उसके बारे में अंग्रेजी प्रेस ने प्रचार किया था कि अंग्रेजों को भारत में बदनाम करने के लिए गांधी ने ग्रीन पेपर छपवाया था। महात्मा गांधी की यह इलाहाबाद में प्रथम संयोग भरी यात्रा थी।

आनन्द भवन

1916 में गांधी को महामना मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में आमन्त्रित किया था। उसी समय 22 दिसम्बर 1916 को गांधी इलाहाबाद के म्योर सेण्टर कालेज और अर्थशास्त्र समिति के तत्वाधान में आयोजित एक कार्यक्रम में भाग लेने आये। व्याख्यान का विषय था, 'क्या आर्थिक प्रगति वास्तविक उन्नति के विपरीत जाती है? इस भाषण में आर्थिक समृद्धि से नैतिक समृद्धि के ह्रास होने की बात पर जोर देते हुए गांधीजी ने अन्त में कहा, ''ब्रिटिश छत्रछाया में हमने बहुत कुछ सीखा है, किन्तु मेरा यह निश्चित मत है कि ब्रिटेन नैतिकता की दिशा में कुछ भी देने में असमर्थ है। हमें सर्वप्रथम परमपिता के राज्य और उसकी पवित्रता की कामना करनी चाहिए। जो ऐसा करेगा। उसके पास सब वस्तुएं आ जायेंगी। सच्चा अर्थशास्त्र यही है। दूसरे ही दिन 23 दिसम्बर को उन्होंने कटघर रोड पर प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षा पर भाषण दिया था।

आनन्द भवन

स्वराज भवन पहले इलाहाबाद कांग्रेस का अस्पताल था। 1930 में इलाहाबाद में जवाहर लाल नेहरू ने एक सभा की, जिसमें महात्मा गांधी भी आये हुए थे। कमला नेहरू भी इसी दौरान गिरफ्तार कर ली गईं। इस दौरान उन्होंने घर के अन्दर एक अस्पताल बनवाया, जिसमें वह राष्ट्रवादियों की देखभाल किया करती थीं, लेकिन इस बात की सूचना मिलने पर ब्रिटिश अधिकारियों ने आन्दोलन के दौरान इसके उपकरण, दवाइयां और एंबुलेंस को जब्त कर लिया था। जनवरी 1940 में भी राष्ट्रपिता महात्मा गांधी इलाहाबाद में आयोजित हुई कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में उपस्थित हुए थे। यह बैठक आनन्द भवन के स्वराज भवन में हुई थी।

इसके बाद 1941 में 28 फरवरी को

महात्मा गांधी इलाहाबाद आये और कमला नेहरू अस्पताल का उद्घाटन किया। उस अवसर पर उन्होंने भाषण भी दिया, जिसमें उन्हेंने कमला नेहरू की देश सेवा और त्याग की बात की। उन्होंने आशा भी की कि यह अस्पताल उनकी स्मृति में उसी प्रेरणा से दुखी मानवता की सेवा भी करता रहेगा। गांधी ने चिन्ता के साथ एक और बात कही थी, मुझे इतना भव्य भवन देखकर डर लग रहा है कि निरीह व्यक्ति यहां आ सकेगा कि नहीं।

दूसरे विश्व युद्व के दौरान जब गांधी ने भारत छोड़ो आन्दोलन का शंखनाद किया तो अंग्रेज समझ गये कि अब भारत के लोग नहीं रुकने वाले। हर शहर-गांव, गली-मुहल्ला आजादी के लिए मर मिटने को तैयार था। आजादी की लड़ाई के दौरान आनन्द भवन कांग्रेस का राष्ट्रीय कार्यालय हुआ करता था। यहीं से कांग्रेस देश भर में कार्य करती रही। महात्मा गांधी हमेशा यहीं रुका भी करते थे।

9 अगस्त को पूरे देश में भारत छोड़ो आन्दोलन का विगुल बज गया। इस मौके पर जब गांधी इलाहाबाद के आनन्द भवन में आये तो शहर के तमाम आन्दोलनकारी, समाजकर्मी और बुद्धिजीवी वर्ग उनसे मिलना चाह रहे थे। अत्यधिक भीड़ होने के कारण वह सभी से नहीं मिल पा रहे थे। भीड़ को देखते हुए निर्णय लिया गया कि संबोधन ऊपर जाकर छत से किया जाए तो बेहतर होगा, वही किया भी गया। 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार के खिलाफ गतिविधि चलाने के आरोप में आनन्द भवन को 1947 तक कब्जे में रखा गया था।

गांधीजी की अन्तिम यात्रा

30 जनवरी 1948 को बिड़ला भवन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को मौत की नींद सुला दिया गया। उनके अन्तिम संस्कार के बाद उनकी अस्थियों को देश भर में ले जाया गया गया। इलाहाबाद में भी अस्थि कलश लाया गया, जिसे आनन्द भवन में रखा गया। एनआईपी के सम्पादक वीएस दत्ता गांधी की मृत्यु की, खबर को कुछ यूं बयां करते हैं–

''इलाहाबाद में महात्मा गांधी की मृत्यु की खबर आग की तरह फैल गई। चारों तरफ सन्नाटा छा गया! उस समय टीवी तो नहीं था। स्थानीय रेडियो स्टेशन भी नहीं था। आकाशवाणी दिल्ली या लखनऊ सुनना पड़ता था। गांधी की मृत्यु हो गई, यह खबर एक शोक धुन से सुनने को मिली थी। उस समय कम्पनी बाग में जिमखाना क्लब में लॉन टेनिस प्रतियोगिता चल रही थी, जिसमें हिस्सा लेने के लिए विदेश से भी खिलाड़ी आये हुए थे।

स्वराज भवन

पाकिस्तान के गौस मुहम्मद मैदान में थे। जैसे ही उन्होंने गांधी की शहादत की खबर सुनी, खेल बन्द करा दिया। इलाहाबाद के इतिहास में ऐसा पहली व आखिरी बार हुआ कि शहर के सभी सिनेमा हॉल 13 दिन के लिए बन्द कर दिये गये। रात साढ़े आठ बजे पूर्व प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और पौने नौ बजे उप प्रधानमंत्री सरदार बल्लभभाई पटेल ने बापू को श्रद्धांजलि दी।

पं. नेहरू बहुत भावुक थे। रुंधे गले से रेडियो पर सुनने को मिला कि 'हमारे जीवन से रोशनी चली गई। अब चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा है। आगे उसी स्पीच को बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि लेकिन रोशनी गायब नहीं हुई है, सदियों तक वह हम सबका मार्गदर्शन करती रहेगी।' रेडियो स्टेशन में न तो जवाहर लाल नेहरू और न ही सरदार बल्लभभाई पटेल ने हत्यारे का नाम लिया, सिर्फ इतना ही कहा कि किसी सिरफिरे, पागल आदमी ने उन पर गालियां चला दीं।

कहीं हत्यारा मुसलमान हो, यह सोचकर काफी मुसलमान शरण लेने कांग्रेस के एक मुसलमान नेता महबूब अली के घर इलाहाबाद स्थित राजापुर म्योर रोड चले गये। वह मुस्लिमों की भीड़ देख किसी ने पुलिस को फोन कर दिया। जब पुलिस को पता चला कि मुस्लिम किसी को इकट्ठा नहीं कर रहे थे, बल्कि अपनी सुरक्षा के लिए आये थे तब उन्हें सुरक्षा प्रदान की गई। देर रात को पता चला कि हत्यारा कोई महाराष्ट्र का युवक है, तब जाकर लोगों का तनाव कम हुआ। पंजाबियों और मुसलमानों ने शान्ति की सांस ली।

आज भी गांधी की यादें आनन्द भवन में संजोकर रखी गई हैं। आज भी आनन्द भवन में एक कमरा गांधी के लिए सुरक्षित हैं। इस कक्ष में पलंग, कुर्सी-मेज, कपड़े, चरखा, तीन बन्दरों का स्टैच्यू आदि रखे गये हैं। आज भी आनन्द भवन को देखने के लिए प्रतिदिन हजारों लोग आते हैं। इलाहाबाद के आजाद पार्क पब्लिक लाइब्रेरी में भी गांधी की यादें सजोकर रखी गई हैं।

इलाहाबाद में गांधी-विचार इस तरह रच-बस गया कि कई लोग स्वराज व स्वदेशी की कमान अभी भी संभाले हुए हैं। इलाहाबाद गांधी को आत्मसात् करता है। जीवन में जीता भी है। इस शहर में गांधी विचारधारा अभी भी सत्य और अहिंसा के साथ जीवित है। ❑

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E)-04, Valid upto 31 December 2023
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविता

हे महात्मन्!

❑ रामानुजलाल श्रीवास्तव

वार! कैसा वार?
किस पर वार?
जो कि मृत्युंजय
उसे क्या मार सकता,
तीर या पिस्तौल
या तलवार?

चुप रहो, वह ऋषि,
महात्मा, साधु, योगी, सन्त
हो चुका था, युगों पहले –
अजर, अमर, अनन्त।
सत्य जिस दिन
सामने आया पसारे हाथ
दे दिया था, उसी दिन,
उसने–झुकाकर माथ–
प्राण, तन, मन, धन, –
कहा था––हो आनन्द-विभोर –
'मोर मो में कछु नहीं,
अब जो कछु है तोर।'
बन गया क्षण बीच
तत्क्षण––वह स्वयं अवतार,
मृत्यु का स्वामी,
उसे क्या मृत्यु सकती मार?
वार! कैसा वार? किस पर वार?

चुप रहो, क्या
मार सकता था उसे वह कीट,
नाम जिसका लूं
तो मारें लोग पत्थर-ईंट।
वह विभीषण, वह दुःशासन
और वह जयचन्द,
हो गया कल से
कि जिसका नाम लेना बन्द।
कहां वह, औ' कहां यह,
जिसके पदों की धूल

थी कि मुर्दों को,
मरों को भी संजीवन-मूल।
सच कहूं––जिसने
गढ़ा है इक नया संसार–
मैं न मानूंगा,
उसे है मृत्यु सकती मार।
वार! कैसा वार? किस पर वार?

चुप रहो, वीरत्व वह,
जैसे प्रकट सशरीर।
पर हृदय में छिपी जिसके
इस जगत की पीर।
वीर ईसा की तरह था;
अली औ' सुकरात–
जुरिस्टर औ' सिक्ख गुरुओं
की बढ़ा दी बात।
वीरगति का हक उसे था
वीरगति को प्राप्त।
कब हुई ऐसे
फकीरों की विभूति समाप्त?
पूर्ण, पूर्णमिदं बना वह
ब्रह्म का अवतार–
मृत्यु दासी थी–
उसे क्या मृत्यु सकती मार?
वार! कैसा वार? किस पर वार?

चुप रहो! जब धर्म का
होता जगत में अन्त।
तब कृपा कर प्रकट होते
गांधी-से सन्त।
आज कह सकते नहीं
यह जग कि रौरव नर्क।
जान कुछ पड़ता नहीं
इसमें कि उसमें फर्क।
शान्ति का बिरवा उगा तो,
फल चखेगा कौन?
इस विषय पर–
तुच्छ कवि का उचित रहना मौन।
बौद्ध मत, ईसाइयत
फूले-फले पर द्वार।
फलेगा यह भी कहीं,
क्या मृत्यु सकती मार?
वार! कैसा वार? किस पर वार?

चुप रहो! छोड़ो–
अगर हो सके––हिंसा-द्वेष।
रह न जाए हृदय में
विद्रोह का लवलेश।
आज उसकी राह पर
निर्भय लुटा दो जान
और हो जाओ जहां में
तुम उसी की शान।
फिर तुम्हीं तुम हो, तुम्हारा रास्ता है
जो तुम्हें मारे, उसे हो गांधी की माफ,
मृत्यु फिर तुमको नहीं है
कभी सकती मार
यदि गया जो, उसे बंधा दे
हृदय का प्यार।
वार! कैसा वार? किस पर वार? ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार